आचार्य विरागसागर ग्रंथमाला : (हिन्दी ग्रन्थांक-14-2)

शब्द-शब्द अमृत

श्रमणाचार्य विमर्शसागर

श्री विमर्श जागृति मंच, प्रकाशन

आचार्य विरागसागर ग्रंथमाला : (हिन्दी ग्रन्थांक-14-2)

शब्द-शब्द अमृत

श्रमणाचार्य विमर्शसागर

प्रकाशक :
श्री विमर्श जागृति मंच
116, भूता कम्पाउण्ड, इटावा रोड़, भिण्ड (म.प्र.) 477001

मुद्रक : अरिहंत ग्रॉफिक्स, दिल्ली
फोन : 9958819046

© श्री विमर्श जागृति मंच (रजि.)

JAIN SHRAVAK AUR DEEPAWALI PARV

By : Sharmanacharya Vimarsh Sagar

Published by :
Shri Vimarsh Jagriti Manch
116, Bhuta Compound, Itawah Road, Bhind (M.P.)

आगमधर सन्त आचार्य श्री विरागसागरजी महाराज

बुन्देलखण्ड की वसुंधरा को गौरव मंडित करने वाले, प्रभु समान गुरु विश्व वंदनीय वात्सल्य तपोनिधि आध्यात्मिक चेतना के तेजपुंज, बुन्देलखण्ड के प्रथम आचार्य, निष्पृही सन्त श्री १०८ विरागसागर जी महाराज शुद्ध चेतना के क्षितिज पर केवलज्ञान सूर्य की भाँति, भव्यजनों के लिये मुक्ति मार्ग प्रकाशक, अपनी दिव्य अनुभूतियों से वीतरागधर्म का उद्घोष कर प्रवर्तन करनेवाले, महान् विराट व्यक्तित्व के धनी महासन्त हैं।

महाश्रमण आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज का अवतरण धन धान्य और खुशहाली से भरपूर दमोह जिले के अन्तर्गत पथरिया नाम के गाँव में ०२ मई १९६३ को हुआ। आपके पिता श्री कपूरचन्द्र जी व माता श्रीमती श्यामादेवी इस पावन सुयोग को पाकर फूले नहीं समाये। घर में बधाई गीत गाये गये। आपका बचपन का नाम टिन्नू था। छोटी उम्र में ही आपने अपने गंभीर व्यक्तित्व से "दाउ" इस प्यार भरे नाम को प्राप्त किया था। आपका घर-परिवार धार्मिकता से पूर्ण था। बचपन में धार्मिक संस्कार भी आपको माताश्री से प्राप्त हुये। वह धार्मिक संस्कार आप में इस तरह फलीभूत हुये कि एक दिन जब माँ जी मंदिर जी दर्शन हेतू चली गईं तो आप भी अकेले ही जिनमंदिर जी जा पहुँचे। जब माँ जी ने आपको मंदिर जी के द्वार पर हँसते खड़ा पाया तो अत्यंत विस्मय को प्राप्त हुईं। फिर तो अगर माँ जी मंदिर नहीं ले जाती तो टिन्नू भैया टिन्न-टिन्न करने लगते इसी कारण तो इनका टिन्नू नाम पड़ा। फिर क्या माता जी को इनके साथ पुनः मंदिर जाना पड़ता। बचपन से ही धार्मिकता के प्रबल संस्कार इन्हें अपने परिवार से प्राप्त हुये।

कहते हैं ललना के पाँव पलना में ही दिखाई दे जाते हैं, तो होनहार बालक टिन्नू जब अबोध जैसी अवस्था में ही थे। तब एक दिन दिगम्बर अवस्था में झाड़ू-लोटा लिये (जो पिच्छी कमण्डलु का

एक प्रतीक था) माताजी के पास पहुँचे और पड़गाहन करने के लिये कहने लगे। माँ श्यामा जी इस दृश्य को देखकर अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हुईं, और कहने लगीं, हे टिन्नू महाराज! आओ-आओ। तुम्हारी पंसद के लड्डू शुद्ध हैं, बस फिर क्या था, टिन्नू महाराज ने अपना पिच्छी कमण्डलु वहीं रखा और माँ जी से लड्डू लेकर खाने में लीन हो गये। माँ श्यामा बालक टिन्नू की इस चेष्टा को देखकर यह विचार करने लगीं कि कहीं हमारा लाड़ला टिन्नू निर्ग्रन्थ मुनि तो नहीं बन जायेगा। माँ का स्वप्न साकार होना था, और हुआ। बचपन में माँ से लड्डू लेकर खानेवाला टिन्नू आज मोक्षफल पाने अर्थात् निवार्ण लड्डू की प्राप्ति में मोक्षमार्गी महाश्रमणत्व को प्राप्त है। घर में प्यार से टिन्नू, दाउ, गुडडू आदि नामों से पुकारा जाने वाला बालक स्कूल में कदम रखते ही अरविन्द नाम से पुकारा जाने लगा। विद्याध्ययन के प्रति रुचि तो बचपन से थी ही। सो अच्छे अंको को लेकर बालक अरविन्द अपने जीवन के उन्नत सोपान प्राप्त करने लगा। घर परिवार में बड़े पुत्रा होने के कारण अपने छोटे-भाई बहिनों को अच्छे-अच्छे संस्कार देना अरविन्द जी की दिनचर्या में शामिल था। सचमुच अपने भाई-बहिनों को अच्छे संस्कार देने का यह दायित्व आज भी आदर्श सन्त के रूप में सभी भव्य जीवों को मोक्षमार्ग संयम व्रत देकर बखूबी निभा रहे हैं।

आपका हृदय सदैव करुणा, दया प्रेम से आप्लावित था। कटनी विद्यालय में पढ़ते हुये एक दिन जब एक चिड़िया को तड़पते हुये देखा, तो आपको उसकी पीड़ा में अपनी पीड़ा नजर आने लगी, और आपने उसे णमोकार मंत्रा सुनाते हुये समाधि तक का व्रत दे डाला। थोड़े ही समय में चिड़िया की समाधि हो गई। बस फिर क्या था उसका संस्कार भी एक गड्डा खोदकर कर दिया गया। सचमुच इस छोटी-सी उम्र में यह कितनी विलक्षण् बात थी। अब तो किसी भी जीव को यदि इस अवस्था में देख लिया तो समाधि व्रत देना एक आपका कर्तव्य ही बन गया, और आपने इस प्रकार कितने ही छोटे-छोटे जीवों को समाधि मरण करवाया। वही समाधिमरण का पावन संस्कार आज भी है। समाधि सम्राट आचार्य प्रवर आप सचमुच बखूबी निभा रहे हैं।

साधु संगति में रहना आपका स्वभाव था। यदि कहीं भी, कभी-भी किसी साधु महाराज के आगमन-गमन का समाचार हो तो दोनों में आपका अग्रणी स्थान था। एक ऐसा ही सुयोग कटनी विद्यालय में महज १६ वर्ष की आयु में आपको प्राप्त हुआ। जब महा तपस्वी सम्राट आचार्य सन्मतिसागर जी महाराज अपने विशाल संघ सहित कटनी पधारे। आप आचार्य श्री व संघ की सेवा वैयावृत्ति में संलग्न हो गये, और प्रतिदिन कमण्डल भरना अपने दैनिक कर्तव्य में शामिल कर लिया। जब आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज का ससंघ बिहार हुआ तो आप भी अपने छोट भैया विजय के साथ महाराज जी को कुछ दूर तक पहुँचाने गये। लेकिन विचार ऐसा बदला कि छोटे भैया को वापिस भेजकर आप आचार्य संघ के साथ विहार करते हुए बुढ़ार पहुँच गये। अल्पवय में ही वैराग्य का अंकुरण फूट पड़ा और आपने अपनी प्रार्थना आचार्य श्री के चरणों में निवेदित कर दी। २० फरवरी सन् १९८० को आपने अल्पवय में दीक्षा लेकर-क्षु. पूर्ण सागर यह नाम प्राप्त किया। आपके क्षुल्लकदीक्षा के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्रीमती राजकुमारी व सवाई सिंघई ज्ञानचंद जैन "लालाजी" बुढ़ार वालों को प्राप्त हुआ। आपका मासूम चेहरा वीतरागता का पावन संदेश दे रहा था। आपने थोड़े ही समय में संस्कृत्, प्राकृत, हिन्दी व सामान्य अंग्रेजी भाषा पर अधिकार प्राप्त कर लिया। साथ ही साथ गुरुकृपा से आत्मनिष्ठा तथा सतत साधना के बल पर निज परम् ब्रह्म से साक्षात्कार करनेवाली आत्मविद्या भी प्राप्त कर ली।

क्षुल्लक अवस्था में ही कर्म ने अपना तीव्र असर आपकी निर्मल साधना पर डालना चाहा। लेकिन आपने इस तीव्र कर्मोदय को अपने संकल्प साधना के बल पर पछाड़ दिया, और छह माह की कठोर यातना को हँसकर झेलते हुये अपने क्षु. पद को नहीं छोड़ा। साथ ही यह संकल्प किया कि यदि स्वास्थ्य अनुकूल होता है तो शीघ्र मुनिपद धारण करूँगा, अन्यथा समाधिमरण ग्रहण

करूँगा (और स्वास्थ्य अनुकूल होते ही संकल्प साकार करने के लिये आप उतावले हो उठे। मन में विचार किया कि दीक्षा के पहले श्री सम्मेद शिखर जी की यात्राा तथा साथ ही एक बार आचार्य विमलसागर जी महाराज के विशाल संघ के दर्शन क्यों न कर लूँ। तुरन्त ही कारंजा से यात्राा पर निकल गये। वहाँ पर आचार्य श्री विमलसागर जी) महाराज ने देखते ही कह दियाकृबेटा ! दीक्षा लेने आये हो, तुम्हारी दीक्षा मेरे द्वारा ही होगी। आपने तब उनसे मना कर दिया कि मैं आपसे दीक्षा लेने नहीं आया। तब आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज ने कहाकृबेटा ! तुम कुछ भी कहो लेकिन दीक्षा तो मेरे द्वारा ही लोगे, और वात्सल्य रत्नाकर गुरुदेव का वह पावन वात्सल्य आपको मिला। साथ उनकी साधना को जब आपने देखा तो सहज ही उनसे दीक्षा लेने का भाव हो आया, और आपने वात्सल्य रत्नाकर गुरुदेव आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज से औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में ६ दिसम्बर १९८३ को विशाल जन सभा के बीच मुनि पद के व्रत अंगीकार कर लिये। साथ ही जन-जन के पूज्य मुनि विरागसागर के नाम से जाने पहचाने जाने लगे। वर्तमान में आप अपने विशाल मुनि संघ के नायक आचार्य हैं।

आपकी वाणी में सदा चिंतन की गहराई, चेतना की ऊँचाई, आत्मानुभूति की झलक स्पष्टतः दिखाई देती है। आपका वात्सल्य व हँसता हुआ चेहरा वीतरागता का चुम्बकीय उद्घोष है। आपकी उज्जवल निर्मल साधना सभी साधक भव्य जीवों के लिये अनुकरणीय है। आप एक निष्काम साधक हैं। अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की जीवन्त मूर्ति हैं। आपकी आत्मानुशासित चर्या मोक्षमार्ग को उन्नत बनाती है।

साधना शैया है ध्यान शयन तेरा
दया परिधान ज्ञान सदन तेरा

आपकी निर्विकारता शिशुवत् है। निर्मल व पारदर्शी चर्या भगवान महावीर व निर्ग्रंथ श्रमणों का दिग्दर्शन कराती है। सदा स्वाध्याय, भक्ति ज्ञान व आचरण की सुगन्ध आपकी चर्या से प्रवाहित होती है। जिसमें अवगाहन कर आपका विशाल संघ भी

उसी रूप वीतरागता व अनुशासन का सहज परिचायक है। सचमुच आपका कठोर अनुशासन आचार्य कुन्दकुन्द महाराज की याद को ताजा करनेवाला है। आपका संघ अनुशासित है। आपकी हितमित प्रियवाणी जन-जन के हृदय में विरागता का उद्घोष करती है। युवाओं में नये संस्कार का बीजारोपण करने वाली है। आपके पावन संदेश समाज में संगठन, प्रेम एकता की मिशाल कायम करने वाले हैं आपके चरणों की रज पाकर हर युवा वृद्ध सदाचार का पाठ सीखते हैं।

आपके द्वारा जहाँ एक ओर चेतन तीर्थों का निमार्ण होता है। वहीं श्रेयांसगिरि जैसे अतिशय प्राचीन तीर्थ क्षेत्रा जहाँ चौथी पाँचवी सदी की मनोहारी प्रतिमायें विराजमान हैं, उसने भी एक नये आयाम प्राप्त किये। आज श्रेयांसगिरि तीर्थ क्षेत्रा पर आपके आशीर्वाद से निर्माण कार्य चल रहा है। जहाँ दूर-दूर से आगत श्रद्धालुजन बड़े बाबा आदिनाथ स्वामी के दर्श कर अपने जीवन को कृतार्थ करते हैं।

पंथ के ग्रंथ से मुक्त हे आगमधर (महाश्रमण) निष्पृही संत आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज आपके द्वारा जो जिनशासन की महती प्रभावना हो रही है वह युगों-युगों तक जीवंत हो। आप मुक्ति श्री के कन्त हों, यही निर्मल भावना है। हे आध्यात्म योगी! आपको कोटिशः प्रणाम।

मर्यादा में जीना मनुष्य का नैतिक व चारित्रिक उत्थान है

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य का जीवन मर्यादा की डोर से बँधा रहता है। मर्यादा विहीन मानव अपनी मनुष्यता से गिर जाता है। मर्यादा से गिरना ही मनुष्य का बौद्धिक पतन है। मर्यादा में जीना मनुष्य का नैतिक व चारित्रिक उत्थान है। अतः मानव समाज को चाहिए कि मानवीय मर्यादाओं का पालन करते हुये एक चारित्रावान, उन्नत समाज की संरचना में अपना बहुमूल्य योगदान देना सीखें।

समाज एवं परिवार में मर्यादित जीवन जीने के लिये लज्जा गुण का होना आवश्यक है। लज्जा गुण सर्वगुणों का आभूषण है। लज्जा गुण के होने पर अन्य गुण स्वयमेव आते हैं। लज्जा गुण के खोने पर अन्य गुण स्वयमेव खो जाते हैं। लज्जा गुण नर-नारी का यथार्थ शृंगार है। लज्जाहीन नारी का शृंगार समाज के लिये कलंक का कारण बनता है। लज्जा का अर्थ है अशुभ कृत्यों से डरते रहना। लज्जा का अर्थ है शुभ कार्यों को करते रहना। जिससे परिवार में एक-दूसरे का सम्मान होता है, ऐसा लज्जा गुण सामाजिक मनुष्य की चेतना है।

वर्तमान में टी.वी. सीरियल संस्कृति के घातक हैं। टी.वी. सीरियल आज संस्कार तो कम, अनैतिकता को अधिक बढ़ावा दे रहे हैं। टी.वी. पर आते हुये विज्ञापन सात्विक गुणों पर प्रहार करने वाले हैं, और बड़े दुःख की बात तो ये है, कि बुजुर्ग लोग अपने बच्चों को समझाने की बजाय उनके साथ बैठकर सीरियल देखते हैं, तो सम्मान और मर्यादायें स्वयं ही समाप्त हो जाती हैं। भगवान राम महावीर के आदर्श आज उतने ही प्रासंगिक हैं जितने पहले थे। हमें चारित्रावान महापुरुषों के आदर्श जीवन को अपने आचरण में उतारना चाहिए।

ॐ

आत्मा अनन्त शक्तिवान है

आत्मा में अनन्त शक्तियाँ विद्यमान हैं। आत्मशक्ति को प्रकट करने के लिय सच्चा संकल्प चाहिये। मानव आत्मशक्ति को भूलकर पर पदार्थ की शक्ति को खोजकर आनंदित हो रहा है। पदार्थ की शक्ति को खोजने वाला वैज्ञानिक कहलाता है। परमार्थ स्वरूप चेतन की शक्ति को खोजने वाला भगवान होता है। इस धरती पर जिसने भी आत्मशक्ति को खोजकर पाया, वही मानव भगवत्ता को जीवन में प्रकट कर सका।

एक परमात्म जिज्ञासु किसी फकीर के पास पहुँचा। बोला मैं परमात्मा का दर्शन करना चाहता हूँ। आप हमें वह उपाय बतायें, जिससे हम अपनी जिज्ञासा का पूर्ण समाधान कर सकें। फकीर ने कहा--अभी तो हम स्नान के लिये जा रहे हैं। जिज्ञासु फकीर के साथ नदी पर पहुँचा। फकीर नदी में उतरकर स्नान करने लगा। फकीर ने जिज्ञासु भक्त को आवाज दी। वह भी स्नान कर ले। जिज्ञासु भक्त जैसे ही फकीर के करीब पहुँचा। फकीर ने गर्दन पकड़कर पानी में डुबो दी। जैसे-तैसे जिज्ञासु नदी से बाहर आया। फकीर ने पूछा--जब हमने तुम्हारी गर्दन नदी में डुबा दी तब तुम्हारी क्या आकांक्षा थी। जिज्ञासु भक्त ने कहा--एक ही संकल्प था, मैं नदी से बाहर अपनी गर्दन निकालूँ। फकीर न कहा--परमात्म दर्शन के लिये इतना ही गहन संकल्प चाहिये। यदि इतना संकल्प हो, तो हमारे साथ चलो। अन्यथा लौट जाओ।

आत्मशक्ति को उद्घाटित करने के लिये दृढ़ संकल्प चाहिये, और इसके साथ ही आत्मा को प्राप्त करने की प्यास तथा धैर्य चाहिये। परमात्मा के अनन्त गुणों की प्राप्ति के लिये अनन्त प्रतीक्षा भी करनी पड़ेगी। आज मनुष्य पदार्थ की शक्ति को खोजकर आविष्कार सृजन कर रहा है। यदि आत्म शक्ति को खोजे, तो निज परमात्मा का आविष्कार कर सकता है।

ॐ

बच्चों को छोटे संकल्प दिलाते रहना चाहिये

सत् संकल्प सुखद जीवन के लिये महत्वपूर्ण विकल्प है। संकल्प ही जीवन में ऊर्जा लाता है। संकल्प ही सफलता का मार्ग देता है। भक्ति संकल्प से श्रद्धा बन जाती है। परमात्मा की आराधना संकल्पपूर्वक हो, तो भीतर परमात्मा का अवतरण होने लगता है। संकल्प से चेतना का नव जागरण होता है।

संकल्प की ठोकर असम्भव को भी सम्भव करती है। मानवीय गुण संकल्प की अग्नि में संस्कारित होकर ही परमात्मा की आकृति को प्राप्त करते हैं। परमात्मा शुद्ध द्रव्य, शुद्ध गुण व शुद्ध पर्याय का मिलन है। संकल्प भक्ति को इतना निखारता है, कि आत्मगुण शुद्धता को प्राप्त हो जाते हैं। संकल्पहीन व्यक्ति सदा दुःखी रहता है। संकल्प में जीना ही आत्म संतुष्टि है। संकल्पहीन मानव चींटी से भी छोटा है। परमात्म भक्ति का संकल्प मन की निर्मलता है। जीवन की शुद्धता का श्रेष्ठ उपाय है।

चार गति--चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण का मूल कारण परमात्मा की भक्ति का संकल्प न होना है। अनन्त दुःख असीम दुःख इस जीव ने संकल्पहीन होने के कारण सहन किये हैं। परमात्मा की भक्ति संसार का कारण है, ऐसा कहने वाले अज्ञानी हैं। परमात्मा की भक्ति के सर्वथा अभाव में कभी भी मुक्ति नहीं मिलती। आदमी सांसारिक उपलब्धियों को प्राप्त करने के लिये तो अनेक प्रकार के संकल्प करता है, किन्तु संसार मुक्ति के लिये संकल्प नहीं करता है। संसार मुक्ति का संकल्प वास्तव में दुःख मुक्ति का संकल्प है। विकल्पों को समाप्त करने का उपाय एकमात्रा परमात्म भक्ति का संकल्प है। हमें बच्चों को सदैव छोटे-छोटे उपयोगी संकल्प दिलाते रहना चाहिये, जिससे उनकी संकल्प शक्ति बढ़ती रहे। संघर्ष में भी उन्हें पराजित न होना पड़े।

७

भाव शून्य भक्ति निष्फल है

भक्ति एक माध्यम है भगवत्ता की उपलब्धि का। भक्ति आनन्द नहीं परम आनन्द देती है। आनन्द के लिये की जाने वाली भक्ति भौतिक है परमआनन्द के लिये की जाने वाली भक्ति आध्यात्मिक है। चेतना का विकास आध्यात्मिक भक्ति से ही संभव है। भौतिक भक्ति भावशून्य होती है। भावशून्य आचार्य विरागसागर ग्रंथमाला : ;हिन्दी ग्रन्थांक-१४-२द्ध

जैन श्रावक और दीपावली पर्व

श्रमणाचार्य विमर्शसागर

प्रकाशक :
श्री विमर्श जागृति मंच
११६, भूता कम्पाउण्ड, इटावा रोड़, भिण्ड ;म.प्र.द्ध ४७७००१

मुद्रक : अरिहंत ग्रॉफिक्स, दिल्ली
पफोन : ६६५८८१६०४६

ो श्री विमर्श जागृति मंच ;रजि.द्ध

श्र ाप्छ ैभ्त ाट ाज्ञ ान्त क्म्म्चॅ ास्प च ात्ट

ठल रूौंतउंदंबींतलं टपउंतेौ हंत

च्नइसपेीमक इल रू
ौतप टपउंतेी श्रंहतपजप डंदबी
११६ए ठीनजं ब्वउचवनदकए प्जूं त्वंकए ठीपदक ;डण्च्ण्द्धभक्ति मोक्षमार्ग में निष्फल है।

भावशून्य भक्ति अंक रहित शून्य के समान है। जैसे अंकरहित शून्यों का योग शून्य ही होता है, उसी प्रकार भाव शून्य भक्तियों का योग शून्य ही होता है। भाव, भक्ति को नव ऊर्जा से संचारित करते हैं। भाव का जीवन में बड़ा महत्व है। भक्ति में भाव और भाव में भक्ति का होना ही सच्ची संवर-निर्जरा है। भक्ति का उद्देश्य संवर-निर्जरा होना चाहिये।

भक्ति के लिये खाली हृदय चाहिये। जिसके हृदय में संकल्प-विकल्प बादलों की तरह उमड़ते रहते हैं। उनके जीवन में

निर्मल बनाना चाहिये। खाली व निर्मल हृदय के आसन पर ही परमात्मा का वास होता है। परमात्मा को बुलाया नहीं जाता, सिर्फ परमात्मा के योग्य आसन तैयार किया जाता है। सरल हृदय में परमात्मा सदा निवास करता है। अगर आप परमात्मा की गहन प्यास से भरे हैं, तो चित्त को सरल बनाना होगा।

शक्तिवान परमात्मा रूपी बीज को आत्मा रूपी खेत में तभी बोया जा सकता है जब खेत ने अपनी कठोरता को छोड़ दिया हो। भगवान की आराधना से पापकर्मों का मूलतः नाश होता है। पुण्यकर्मों से परमात्मा की निकटता होती है। पुण्य और पाप समस्त कर्मों के विनाश से आत्मा भी परमात्मा बन जाती है।

ॐ

मनुष्य का जीवन शांति की क्रांति के लिये

अशुभ कार्यों में आनन्द मानना ही अज्ञानता है। मनुष्य का जीवन शांति की क्रांति के लिये है। अशुभ कार्यों से कभी शांति का जन्म न हुआ है न कभी होगा। अशुभ कार्यों से चेतना मलिन होती है, जिससे हमारा ज्ञान, बुद्धि, विवेक निरन्तर खोता चला जाता है। समाज के विपरीत कार्य करना सामाजिक अपराध है। धर्म के विपरीत कार्य करना धार्मिक अपराध है। जबकि समाज के योग्य, धर्म के योग्य कार्य करना क्रमशः सामाजिक व धार्मिक गरिमा को बढ़ाना है। इससे चारों ओर शांति व खुशहाली का वातावरण बनता है।

धर्म आत्मशांति की प्रेरणा देता है। आत्मशांति होने पर ही समाज, परिवार, राष्ट्र में शांति की स्थापना हो सकती है। आत्मशांति का मार्ग अपने चौबीस घंटों में किये गये शुभाशुभ कार्यों का निरीक्षण करने से ही प्राप्त हो सकता है। यदि मनुष्य अपना आत्मनिरीक्षण करना प्रारंभ कर दे तो ५०ः अपराध अपने आप ही समाप्त हो जायेंगे। आत्मनिरीक्षण ही वास्तविक धर्म है। आत्मनिरीक्षण के अभाव में धर्म क्रिया तो चलती रहती है किन्तु धर्म का नाश हो जाता है। सच्चा धर्म तभी होगा जब हम आत्मनिरीक्षण को समय निकालकर अपनी अच्छाइयों व बुराइयों का मूल्याकंन करेंगे। जीवन में प्रत्येक मनुष्य को दो कार्य जरूर करना चाहिये। प्रथम तो आत्मनिरीक्षण। दूसरा अपनी बुराईयों का त्याग। इन दो कार्यों को करना अपने जीवन को उन्नत और समृद्ध बनाना है। यदि हमारा जीवन इतना आदर्शमयी होगा, तो निश्चित ही हमारा परिवार, समाज, धर्म और राष्ट्र समृद्धि को प्राप्त होगा।

मार्ग तो एक ही होता है, जिस पर अच्छे लोग भी चलते हैं और बुरे लोग भी चलते हैं। अच्छे लोग जब मार्ग पर चलते हैं तो परमात्मा के गीत गाये जाते हैं। प्रसन्नता और खुशी का हर तरफ

आलम होता है। जब बुरे लोग मार्ग पर चलते हैं तो भय की स्थिति बन जाती है। मार्ग बुरा नहीं होता, अच्छे बुरे लोगों से मार्ग भी यश-अयश को प्राप्त करता है। परमात्मा का नाम जपने वालों का तूफान भी बिगाड़ नहीं कर पाते, जबकि परमात्मनाम को छोड़ देने से हम संकटों को स्वयं आमंत्रित करते हैं। सुभौम चक्रवर्ती प्रभु नाम छोड़ने से नरक गया।

ॐ

देह की सुंदरता मन को भटकाती है

देह का सौंदर्य क्षणिक है शाश्वत नहीं। देह की सुंदरता मन को भटकाती है। सुंदरता बुरी नहीं, सुंदरता की कामना बुरी है। सुंदरता देह को मूल्यवान बनाती है। मन को चंचल बनाती है। देह के दीवाने अपना सारा समय देह सौंदर्य में व्यर्थ गँवा देते हैं। जितना समय मन की पूर्ति में देते हैं यदि इतना ही परमात्मा की भक्ति में दें, तो आत्मसौंदर्य प्रगट हो सकता है।

परमात्मा के समान सुंदर लोक में कोई नहीं होता। परमात्मा कामना-वासना से मुक्त है। परमात्मा सम्पूर्ण विकारी भावों से शून्य है।परमात्मा आत्मसौंदर्य में लीन है। परमात्मा राग-द्वेष से रहित है। परमात्मा चिंता और चिंतन से रहित है। परमात्मा आत्म आनंद में मग्न है। इसीलिये परमात्मा का सौंदर्य सर्वोत्तम है। जबकि संसारी आत्मायें रूप सौंदर्य की प्यासी हैं। राग-द्वेष से भरी हुई हैं। आत्म आनंद से अपरिचित हैं। कामना -वासना को अपना आभूषण बना रखा है। भोगों की दीवानी हैं। चिंता में घिरी हुई हैं। सम्यक् चिंतन से कोसों दूर हैं। भोग के आनन्द में ही जीवन मानती हैं। ऐसी संसारी आत्मायें अपने रूप को खो रही हैं। अपने स्वरूप को भोगों के हाथों गिरवी रख रही हैं।

आत्मा शक्तिरूप से सुंदर है परमात्मा व्यक्ति रूप से सुंदर है। आत्मा की अभिव्यक्ति ही परमात्मा है। परमात्मा की भक्ति करने से आत्मा भी सुंदर होती है। देह की सुंदरता भी प्राप्त होती है। परमात्मा की भक्ति से हीन व्यक्ति सुंदर होने पर भी कुरूप है। परमात्मा की भक्ति से भरा हुआ व्यक्ति कुरूप होने पर भी सुंदर है। जीवन भोग की तप्त भूमि पर मत जलाओ आत्मा की खोज भोग में नहीं, भोग के त्याग में ही हो सकती है। हीरा भूमि की सुरक्षा में नहीं भूमि को खोदकर अलग करने से ही प्राप्त होगा। वीतरागी परमात्मा का रूप वीतरागता का उत्पादक है।

ॐ

परमात्मा उपमातीत परम सौंदर्यवान है

परमात्मा संसार की समस्त उपमाओं से रहित है। चाँद की उपमा तो स्त्राी के मुख को दी जाती है, किन्तु स्त्राी के मुख की उपमा चाँद को नहीं दी जाती। मोतियों की उपमा तो दाँतों को दी जाती है किन्तु दाँतों की उपमा मोतियों को नहीं दी जा सकती। उपमायें उन्हें दी जाती हैं, जो वास्तव में वैसा होता नहीं। जो वास्तव में ही वैसा होता है फिर उसे कोई उपमा नहीं दी जा सकती।

परमात्मा उपमातीत हैं। परमात्मा के समक्ष सभी उपमायें बौनी हैं। परमात्मा अपने में पूर्णता को प्राप्त है। परमात्मा अगर उपमा के योग्य हो गया, तो निश्चित ही उपमा महान हो जायेगी, परमात्मा उपमा से हीन हो जायेगा, किन्तु समस्त उपमायें परमात्मा के समक्ष मौन हैं। परमात्मा अनुपम है। सकलंक चाँद की उपमा स्त्राी को दी जा सकती है किन्तु परमात्मा के मुखमण्डल को नहीं दी जा सकती । परमात्मा के मुखतेज के सामने सूरज और चाँद भी निस्तेज, निष्प्रभ हो जाते हैं। जो मनुष्य परमात्म संपदा पाना चाहते हैं, उन्हें उपमा और उपाधि का अवश्यमेव त्याग करना चाहिये। जो उपाधि में आनंदित होता है। वह मनुष्य निश्चित ही परमात्मा भक्ति से कोसों दूर है।

मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन आज दूसरों के नेत्रा हरण, अर्थात् आकर्षित करने में व्यतीत हो रहा है। हम अच्छे वस्त्रा, अच्छे बालों की सेटिंग, अच्छे जूते, अच्छा मकान, अच्छी गाड़ी, सुंदर शरीर, अच्छे सुंदर आभूषण क्यों चाहते हैं ? सिर्फ इसलिये, कि देखने वाला हमारी तारीफ से भर जाये। हर मनुष्य दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है। यदि इतना ही आयोजन हमने निज परमात्मा को आकर्षित करने के लिये किया होता, तो हमारे लिये परमात्म सौंदर्य की उपलब्धि हो जाती।

अजर-अमर आत्मा का संसार में आवागमन समाप्त हो

दीनता के साथ जन्म लेने वाला दीनतापूर्वक ही मरण करेगा, यह कोई अनिवार्य नहीं है। दीनता में जन्म लेकर दीनता में ही मरण करना जीव के दीर्घसंसारी होने का परिचायक है। जबकि दीनता में जन्म लेकर दीनता को समाप्त कर देना और वीरतापूर्वक मरण करना मनुष्य के निकट संसारी होने का प्रमाण है। हमें भिखारी के रूप में जन्म मिलने के बावजूद भी भगवत् सत्ता को उपलब्ध कर मरण करना चाहिये, जिससे अजर-अमर, आत्मा का संसार में आवागमन समाप्त हो सके।

मनुष्य का जन्म इस कलिकाल में मिथ्यात्व के साथ ही होता है। मिथ्यात्व के साथ जन्मा व्यक्ति अनिवार्य नहीं कि मिथ्यात्व के साथ ही मरण करे। अपितु सम्यग्दर्शन के साथ भी मरण को प्राप्त हो सकता है। समाधि की यात्राा भी कर सकता है। सम्यक्त्व के साथ मरण करने वाला जीवात्मा संख्यात-असंख्यात भव धारण कर नियम से मुक्त होता है। देशचारित्रा या सकलचारित्रा को धारणकर मरण को प्राप्त होने वाला जीवात्मा नियम से समाधि को प्राप्त होकर सात या आठ भवों में संसार से मुक्त होता है। सम्यक्त्व, देशचारित्रा और सकलचारित्रा के साथ मरण की प्राप्ति ही दीनता का नाश और वीरता का विकास है।

जिसे निज आत्मा का श्रद्धान होता है, उसे परमात्मा का श्रद्धान होता है। निज आत्मा के श्रद्धान के अभाव में परमात्मा का श्रद्धान मोक्षमार्ग में कार्यकारी नहीं है। आत्म श्रद्धान के लिये आत्मस्वभाव का ज्ञान होना जरूरी है। आत्मस्वभाव का ज्ञान होने पर आत्मश्रद्धान हो ही यह जरूरी नहीं है, किन्तु जो आत्मस्वभाव का लक्षण है, उसे जानकर श्रद्धान होता है, वह आत्म श्रद्धान नियम से आत्मज्ञान का हेतु बनता है।

एकत्व भावना से मन निराकुल होता है

भावना जीवन सृजन की महत्वपूर्ण आधार हैं। हम जिस प्रकार की भावना बनाते हैं वैसी ही क्रिया प्रतिक्रिया कर पाते हैं। अच्छा जीवन जीने की अगर तमन्ना है तो हमें अच्छी भावनाओं को तरजीह देना होगी। शुभ का उदय शुभ भावनाओं से ही होता है। अच्छे संकल्प अच्छे जीवन में कार्यकारी होते हैं। जो भी महापुरुष हुये, उन्होंने अच्छे संकल्प और अच्छी भावनाओं को आचरण का आधार बनाया, जिससे वे महानता की सीढ़ियाँ चढ़ते चले गये।

हमें भावनाओं के दर्पण में अपने जीवन का प्रतिबिम्ब देखना चाहिये। भावनाओं में अपना जीवन चरित्रा निहारना चाहिये। सत् भावनाओं से श्रेष्ठता का मार्ग प्रशस्त होता है और असत् भावनाओं से अश्रेष्ठ जीवन का निर्माण होता है। सच्ची भावनायें ही हमें दुर्गति से बचा सकती हैं। दुर्गति प्राप्त करने के लिये हमें कुछ भी नहीं करना पड़ता, किन्तु सुगति की प्राप्ति के लिये सारा जीवन दाँव पर लगाना पड़ता है। पानी को ऊपर चढ़ाने के लिये उपाय करना पड़ता है, किन्तु ऊपर से नीचे लाने के लिये श्रम की आवश्यकता नहीं पड़ती।

बुरे संकल्प और बुरी भावनाओं से जीवन निरंतर पतन को प्राप्त होता है। भावनायें शूल भी बन सकती है, तो फूल भी बन सकती हैं। हम स्वयं अपने अच्छे-बुरे भविष्य के निर्माता हैं। अच्छे संकल्प की भावना से बुरे आचरण का समापन नहीं होता, हमें बुरे आचरण का भी बुद्धि पूर्वक त्याग करना चाहिये। हमें श्रेष्ठ जीवन के लिये बारह भावनाओं का चिन्तवन करना चाहिये। इन बारह भावनाओं को सच्चे रूप में भाने वाला मानव सत्य को जान लेता है। बारह भावनाओं का चिन्तवन करे बिना सत्य का परिचय असंभव है। एकत्व भावना के चिंतन से मन निराकुल होता है।

निराकुल होना भी भावनाओं का फल है।

ॐ

अल्पज्ञान भक्ति में बाधक नहीं होता

भक्त सच्चा हो, तो भक्ति में आने वाली बाधायें भी उसे उपकारी मालूम पड़ती हैं। भक्त बाधाओं को सखा बना लेता है। भक्ति बाधाओं में प्राणवान हो जाती है। बाधायें पराजित होती हैं, भक्त पराजित नहीं होता। काँटों को कुचला जाता है, फूलों को सिर पर गूँथा जाता है। भक्ति को स्वर, संगीत नहीं, गहन भावों की विशुद्धि चाहिये। स्वर, संगीत प्राथमिक भक्ति की प्रेरणा है, जिससे मन चंचलता को छोड़ परमात्मा में रमे। जब परमात्मा में डूबना आ जाये तो भक्ति चमत्कारिक हो जाती है।

ज्ञान की अल्पता भक्ति में बाधक नहीं। ज्ञान का अहंकार ही भक्ति में बाधक है। अल्पज्ञान यदि भक्ति के रस में डूब जाये, तो केवलज्ञान होने में देर नहीं रहती। अल्पज्ञानी को विद्वान की सभा में हँसी का, उपहास का पात्रा भी बनना पड़े, तो भी वह भक्ति से विचलित नहीं होता। उपहास भक्ति का प्रवेश द्वार है। जो इस प्रवेश द्वार में निर्भय होकर आगे बढ़ता है। उसे तीन लोक में कोई परमात्मा होने से नहीं रोक सकता।

परमात्मा के सामने जल, फल, चावल तभी चढ़ाना सार्थक हो सकते हैं, जब उपहास में भी उपकार का भाव आ जाये। उपहास करनेवाला ज्ञानी नहीं हैं, किन्तु उपहास को स्वीकार करने वाला भी ज्ञानी नहीं है। उपहास में भी भक्ति करनेवालों का कुछ बिगड़ता नहीं, लेकिन उपहास के डर से परमात्म भक्ति को छोड़ने से भव-भव बिगड़ जाते हैं। मनुष्य भव सभी योनियों में श्रेष्ठ है। इसे भक्ति के माध्यम से ही उन्नत बनाया जा सकता है। धन वैभव सम्पन्नता का होना पुण्य का योग है। पुण्ययोग में भक्ति को करना भविष्य को सुरक्षित सुखमय बनाना है।

ॐ

मनुष्य की देह पुदगल परमाणुओं का संकलन है

भक्ति आत्मा का स्नान है। देह का स्नान जल से होता है। देह को स्नान कराने से आत्मा स्वच्छ नहीं होती। देह का स्नान परमात्मा की आराधना के लिये होना चाहिये। उद्देश्य के अनुसार भाव निर्मित होते हैं। भावों के अनुसार आत्मा पुण्य-पाप कर्मों को बाँधता है। देह की स्वच्छता के लिये स्नान करना पाप है, परमात्मा की आराधना के लिये देह को स्नान कराना पुण्य है। परमात्म भक्ति से इस लोक में तथा परलोक में सुख की प्राप्ति होती है।

भक्ति आत्मशांति तथा विकल्पमुक्ति का उत्तम उपाय है। भक्ति से मन प्रसन्न होता है, तथा देह के परमाणु विशुद्ध होते हैं। मनुष्य की देह पुद्गल परमाणुओं का संकलन है। प्रभु भक्ति से देह के परमाणु मंत्रित होते हैं। जिससे बीमारियाँ आक्रमण नहीं कर पातीं। संतजन परमात्म भक्ति में संलग्न रहते हैं, जिससे उनकी देह के परमाणु स्वस्थ ऊर्जा को धारण करते हैं। जब भी कोई बीमारी आक्रमण करती है, तो वह शुद्ध परमाणु ऊर्जा उसे ठहरने नहीं देती। इसीलिये साधुजन औषधि का भी प्रायः त्याग कर देते हैं, और परमात्म भक्ति रूपी औषधि से आत्मा को निर्मल तथा देह को रोग प्रतिरोधी बनाते हैं।

संत के चरणस्पर्श करने से उनकी विशुद्ध ऊर्जा का संचार होता है। जो हमें आत्मशांति प्रदान करते हैं। संत का भक्तिमय जीवन स्वपर कल्याण का हेतु है। परम आनन्द का आधार है। संसार का नाश करने वाला है। भक्ति से आत्म गुणों की प्राप्ति गुणात्मक रूप में होती है। भक्ति का दीप जब तक जलेगा, आलोक बाँटता ही रहेगा। भक्ति का संगीत जब तक बजता रहेगा आत्मा और मन को शुभ विचारों से पवित्रा करता रहेगा।

ॐ

मन की तृष्णा ज्ञान के अंकुश से मिटती है

ज्ञान मन को नियंत्रित करता है। मन ज्ञान को अज्ञान बनाने का प्रयत्न करता है। मन की तृष्णा ज्ञान के अंकुश से ही समाप्त होती है। मन भोग में सुख की कल्पनायें संजोता है। मन देह सुख की चिता पर सुलाता है। पद और पदार्थों में रमना मन की नियति है। मृत्यु को भुलाकर मौत के मुख में ले जाना मन का काम है। मनुष्य जितना अपने पूर्वकृत कर्म से दुःखी नहीं, उतना अपने मन के छलियापन से दुःखी है। इस मन के आकाश में ज्ञान का उड़ान भरना ही अज्ञान है।

मन की चंचलता को समाप्त करने के लिये हमें जप, तप, स्वाध्याय, स्तोत्रा, भावनाओं का चिंतवन नियमित करना होगा। हम जितने-जितने धर्म क्रियाओं से जुड़ते जायेंगे, उतने-उतने ही मानसिक रूप से स्वस्थ होते जायेंगे। जप करते समय हमें यह विचारना होगा, कि हमें पूर्ण शांति मिल रही है। ऐसा विचार इसलिये करना है जिससे मन अशुभ में आनन्द होने का संदेश न दे पाये। जप करने से जहाँ विचारों में निर्मलता आती है, वहीं भावनायें भी चमत्कारी होती जाती हैं। जिस व्यक्ति के विचार निर्मल हैं, यदि वह प्रभु नाम के मंत्रा से अपनी भावनाओं को मंत्रित करता है, तो वह भावनायें ही औषधि का काम करती हैं। जबकि अशुभ विचारों से भरा हुआ चित्त बीमारियों को आमंत्राण देता है।

तप के माध्यम से उन अशुभ कर्मों की निर्जरा होती है, जो हमें मानसिक, वाचिक और कायिक रूप से रुग्ण करने का कार्य करते हैं। तप के अभाव में सत्ता में स्थित ये कर्म, योग्य समय पर उदय में आकर मनुष्य को विक्षिप्त करते हैं। इसलिये जप की सार्थकता के लिये तप का होना भी अनिवार्य है। स्वाध्याय करने से ज्ञान का विकास होता है। ज्ञान के विकास से मन की

उद्दण्डतायें □ासता को प्राप्त होती हैं। ज्ञान के द्वारा मन की विपरीतता को जाना जा सकता है। मन की विपरीतता को जानकर जप-तप-स्तुति के माध्यम से संतुलित जीवन जीने की दिशा में एक कारगर व सार्थक कदम उठाया जा सकता है।

साहसी मनुष्य के जीवन में तनाव नहीं होता

साहस मनुष्य का मनोबल बढ़ाता है। साहसी मनुष्य की सोच सदैव सकारात्मक होती है। साहसी मनुष्य ही अपने जीवन में उन्नति कर पाते हैं। साहस आत्मा की वह विशिष्ट शक्ति है, जो ऊर्जा को उत्पन्न करती रहती है। साहसी मानव कभी भयभीत नहीं होता। साहस मनुष्य को संघर्षशील बनाता है और केवल संघर्षशील ही नहीं बनाता, अपितु संघर्षों में भी प्रसन्नता का संचार करता है। जो मनुष्य साहसी नहीं होते, वे छोटे-छोटे संघर्षों में घबरा जाते हैं। साहसी मानव के जीवन में तनाव नहीं होता।

सूर्य की हर किरण साहस से भरी होती है। श्याम बादलों के आ जाने पर भी सूर्य किरण अपना हौंसला बुलन्द रखती है, बादल ही बिखरते हैं, सूर्य किरण नहीं। बादल ही मिटते हैं, सूर्य किरण नहीं। बादलों का असितत्व समाप्त होता है, सूर्य किरण का नहीं। प्रकृति हमें कुछ ऐसे ही संदेश देती है, किन्तु हम प्रकृति की इस मौन शिक्षा को समझने में चूक कर जाते हैं। प्रकृति का जीवन साहस और संकल्प की यात्राा है। भक्ति भी एक ऐसा ही साहसपूर्ण कार्य है। प्रभु की भक्ति साहसी व्यक्ति ही कर सकता है। परमात्मा की कृपा साहसी व्यक्ति पर ही बरसती है। परमात्म नाम की श्रद्धा इतनी गहन हो कि हमें आँधी तूफान भी भक्तिवान होने से न रोक पायें।

संसार सागर को पार करने के लिये साहस और संकल्प का होना अतिआवश्यक है। असंयम और मिथ्यात्व के तूफान हमें संसार सागर में ही डुबा देने वाले हैं। घर-परिवार के जो संगी-साथी हैं वे जलचर जीवों की तरह हमारा अहित करने वाले हैं। साहसी मनुष्य ही इस सत्य को स्वीकार कर पाते हैं। सच, ऐसे मानव ही आत्मा के उत्थान हेतु त्याग के लिये अंगीकार करते हैं। हमें आत्म कल्याण के लिये सम्यक्त्व का साहस व चारित्रा का

संकल्प लेना होगा।

रक्षाबंधन पर्व एक-दूसरे के हित में जीने की शिक्षा देता है

रक्षाबंधन पर्वों का पर्व है। धार्मिक सामाजिक समस्त पर्वों में रक्षाबंधन पर्व का एक अपना महत्व है। धर्म, समाज और देश की संस्कृति को गौरवान्वित करने में रक्षाबंधन पर्व की अपनी विशिष्ट पहिचान है। सम्पूर्ण मानवजाति को एकता, प्रेम, वात्सल्य और परस्पर सहयोग की पवित्रा आभा से मंडित करने वाला यह रक्षाबंधन पर्व सम्पूर्ण पर्वों में आदर्श है। इस पर्व से जहाँ घर-परिवार की क्यारी सुवासित होती है, वहीं धर्म के प्रति समर्पण और आस्था को भी नये आयाम मिलते हैं। इसलिये रक्षाबंधन पर्व का प्रत्येक मनुष्य को स्वागत करना चाहिये।

जैन अपने त्यौहार मनाता है। हिन्दु अपने त्यौहार मनाता है। मुस्लिम, सिख, ईसाई अपने-अपने त्यौहार मनाते हैं। इस तरह सभी धर्म और जाति के लोग समय-समय पर अपने-अपने त्यौहार मनाकर आनंदित होते हैं, किन्तु आज हमें रक्षाबंधन जैसे सर्वमान्य त्यौहार को कुछ अधिक ही तरजीह देना चाहिये जिससे सभी में आपसी व्यवहार प्रेम और वात्सल्य का भाव बना रहे तथा एक-दूसरे के लिये भी जीना सिखाये। वास्तव में रक्षाबन्धन पर्व स्वार्थ से मुक्त कर एक-दूसरे के हित में जीना सिखाता है।

भाई-बहिन के लिये वर्ष में एक बार यह पर्व आपसी शिकवे को भुलाकर निश्छल प्रेम की डोरी से बाधँता है। बहन के द्वारा भाई की कलाई पर बाँधी गई राखी, बहिन की रक्षा और भाई की परीक्षा का खुशनुमा वातावरण तैयार करती है। बहिन कहती है भैया हम और तुम एक ही डाली के दो फूल हैं। हमें इस घर से एक दिन दूसरे घर जाना होगा। उस समय तुम्हारा स्नहे ही हमें जीवन की प्रेरणा देगा। मरकर नये घर में जन्मना सरल है किन्तु जीते जी नये घर में जन्मना कठिन होता है। ऐसे समय में जब बहिन दुःखी हो, तो तुम बहिन की रक्षा करना।

७

निर्दोष आलोचना से समाधि घटित होती है

दूसरों को तिरस्कृत करने के लिये आलोचना करना महापाप हैं। यूँ तो मनुष्य कदम-कदम पर पाप के कृत्य करता है। कभी हिंसा, तो कभी झूठ। कभी चोरी तो कभी कुशील सेवन। कभी परिग्रह के लिये बिना विचारे दौड़-धूप। इन सभी पापों को जीव एक-दिन में कहीं न कहीं करता जरूर है। इन पाँच पापों से बच पाना अत्यंत कठिन है। फिर भी धन्य हैं वे प्राणी जिन्होंने इन पाँच पापों का त्याग कर सत्य से अनुराग किया। जीवात्मा का सत्य के लिये प्रयास करना ही धर्म है।

धर्म की प्राप्ति और रक्षा के लिये प्रत्येक मनुष्य को आलोचना की हेयोपादेयता समझना आवश्यक है। जब तब आलोचना की हेयोपादेयता का विवेक जाग्रत नहीं होता, तब तक मनुष्य निरंतर पापकर्म का ही सजृन करता है। आलोचना कथंचित हेय है, छोड़ने योग्य है अर्थात् दूसरों को नीचा दिखाने के लिये खोटी भावनाओं से उसके गुणों को छिपाकर झूठे ही आलोचना करने लग जाना, इस धरती पर महापाप है। इसमें पाँचों पापों का आगमन हो जाता है। ऐसी आलोचना सज्जनों के लिये छोड़ने योग्य है, तथा आलोचना कथंचित उपादेय है ग्रहण करने योग्य है अर्थात् अपने दोषों को भली-भाँति जान कर उन दोषों का प्रत्याख्यान करने के लिये गुरु के निकट जाकर जो दोषों का व्याख्यान किया जाता है। ऐसी ही आलोचना सज्जनों को ग्रहण करने योग्य है।

अपने दोषों की आलोचना कर प्रत्याख्यान करने से आत्मा में ऊर्जा का संचार होता है। ऐसी पवित्रा आत्मा से निकलती हुई वर्गणायें प्रेम और शांति का पैगाम लाती हैं। आत्मा में परमात्मा अनुभूति का स्फुरण होता है। समाधि का साधन निर्दोष आलोचना है। अतः आलोचना दूसरों की नहीं स्वयं की करो।

७

प्रभुता के लिये जीना ही जिंदगी की बरबादी है।

जिंदगी परमात्मा की अमानत है। अगर हम अपना जीवन परमात्मा को समर्पित कर दें, तो जिंदगी में खुशहाली आपोआप प्रकट हो जायेगी। जैनदर्शन में परमात्मा कर्ता-धर्ता-हर्ता नहीं है, अपितु तू स्वयं परमात्मा है, अर्थात् प्रत्येक जीवात्मा में परमात्मा होने की शक्ति विद्यमान है, अगर आत्मा स्वयं अपने परमात्मा को समर्पित हो जाये, तो आदमी की जिंदगी से दुःख का नामोनिशां ही समाप्त हो जायेगा। सच्चे देव-सच्चे शास्त्रा और सच्चे गुरु तो निमित्तमात्रा हैं, परमात्मा होने का उपादान तो आत्मा में छिपा है। निमित्त और उपादान दोनों का मिलन होते ही परमात्मा का निजघट में अवतरण होना प्रारंभ हो जाता है। अतः हम अपना जीवन अपने निज परमात्मा को समर्पित करें, जिससे आत्मानंद प्रकट हो सके।

साधन के अभाव में कभी भी साध्य की निष्पत्ति नहीं होती। साधन ही साध्य को उपलब्ध कराता है। कारण-समयसार ही कार्य-समयसार को उपलब्ध कराता है। व्यवहार संयम कारण है और निश्चय संयम कार्य है। साधन की उपादेयता भी तभी तक है जब तक कि साधक अवस्था है साध्य की अवस्था में साधन की उपादेयता नहीं रहती। गन्ना तभी तक अपादेय है जब तक रस रूप अवस्था प्राप्त नहीं होती, किन्तु गन्ने से रस के प्राप्त हो जाने पर गन्ने की उपादेयता नहीं रहती। गन्ना साधन है और रस साध्य है। साध्य की सिद्धि में अनेक साधन होते हैं। एक साधन के भी अभाव में कभी साध्य अवस्था उद्घाटित नहीं होती। परमात्मा की प्राप्ति में जितने भी साधन हैं वह हमें स्वयं खोजने होगें। सच तो यह है परमात्मा हमसे दूर नहीं है, सिर्फ साधन का अभाव है। यदि साधन प्राप्त हो जायें, तो परमात्मा रूप साध्य की

प्राप्ति होने में देर नहीं है। मिट्टी में घड़े होने की शक्ति है सिर्फ साधन प्राप्त हो जाये।

आत्मा अज्ञान दशा में अपनी चैतन्य शक्ति को भूल बैठा है। जिससे पर वस्तुओं को पाकर हर्ष-विषाद करता हुआ दुर्गति का पात्रा बन रहा है। प्रभु होकर भी बा□ प्रभुता के लिये पागल बना हुआ है। भीतर यदि एक बार भी झाँककर देखले, तो प्रभुता का नशा उतर जायेगा, प्रभु का स्वरूप प्रकट हो जायेगा। जीवन को प्रेम करने वाला ही प्रभुता का त्याग कर सकता है, लेकिन अक्सर लोग जीवन को समझ नहीं पाते, इसी कारण प्रभुता के लिये जिंदगी बरबाद कर देते हैं सच तो ये है कि लघुता ही जिंदगी का अहसास है और प्रभुता जिंदगी की बरबादी।

७

सद्गुणों के बाबत् सुनना ही धर्मश्रवण है

सुनना एक कला है। सुनना मानव जीवन की उपलब्धि है। सुनना मानव की विशिष्ट जीवन शैली है। सुनना ज्ञान विकास की परिचायक है। श्रेष्ठ और सर्वश्रेष्ठ जीवन के लिये सुनना आत्मज्ञान की अभिव्यक्ति है। सद्गुणों के बाबत् सुनना ही धर्मश्रवण है।

सुनना अच्छाई भी है और बुराई भी। जब अपने आत्मकल्याण एवं चारित्रिाक, नैतिक विकास के लिये सुना जाता है, तो सुनना अच्छाई कहलाती है। पवित्रा लक्ष्य के साथ सुनने वाला मनुष्य धरती पर देवता की तरह होता है। जो स्वयं अच्छाई को ग्रहणकर सम्पूर्ण मानव समाज एवं प्राणियों को सद्मार्ग पर ले जाता है, किन्तु जो मात्रा दूसरे की निंदा, चुगली, बुराई या अवगुणों को सुनने में रस लेता है वह मन से गन्दा है। जिसका मन गंदा होता है उसके वचन तथा शरीर की चेष्टायें भी विपरीत होती हैं। इसलिये सद्गुणों के बाबत् सुनना अच्छाई किन्तु दुर्गुणों के बाबत् सुनना बुराई है।

अच्छाईयाँ सुनने से जीवन विराटता को प्राप्त होता है, जबकि बुराईयाँ जीवन को संकुचित करती हैं। अज्ञानी जनों को सदैव गुणों की चर्चा सुननी और करनी चाहिये, जिससे अज्ञान अंधकार समाप्त हो सके, किन्तु भूलकर भी अवगुणों को नहीं सुनना चाहिये अन्यथा अज्ञान अंधकार और भी घना हो जायेगा। ज्ञानीजनों को आत्मगुणों के बाबत् सुनकर हर्षित नहीं होना चाहिये, तथा अवगुणों को सुनकर अपना आत्मचिंतन करना चाहिये। अवगुण सुनकर विचलित नहीं होना ही सच्चा ज्ञानीपना है।

अच्छा सुनने के बाद यदि जीवन में परिवर्तन होता है तो ज्ञानी का लक्षण है। हमें मात्रा बाह्य वेष और भेष ही नहीं अपितु अपना हार्दिक परिवेष भी बदलना चाहिये। हृदय परिवर्तन ही

वास्तव में जीवन परिवर्तन है। हृदय परिवर्तन से मनुष्य परमात्मा तुल्य हो जाता है।

ॐ

मन कभी अंधे की लकड़ी तो कभी आँखों का चश्मा

मन कभी फूलों की सेज है, कभी काँटों का बिस्तर। मन कभी परमात्मा की प्रतिमा है, कभी खान का प्रस्तर। मन कभी आनन्द का सागर है कभी दुःख का सरोवर। मन कभी सत्य है, शिव है, सुन्दर है, तो कभी सत्य, शिव, सुन्दर का आलोचक और निन्दक। आदमी का मन सदैव चिंतन और मनन की पीठ पर बैठ सैर करता है। यदि चिन्तन अच्छा है, तो मन भी अच्छा होगा। यदि चिंतन खोटा है, बुरा है तो अच्छे मन की कामना बेमानी है।

मन का परिवर्तन सच्चे अर्थों में जीव का परिवर्तन है। मन में जब अच्छे विचार उठते हैं तो जीवन अच्छा बनने लगता है। मन में जब बुरे विचार पनपते हैं तो जीवन बुरा होने लगता है। अच्छे और बुरे विचारों का ज्ञान सम्यग्दृष्टि ही कर पाता है। अच्छे विचार सदैव अपने हित के साथ दूसरों का भी हित करना चाहते हैं। अपनी भलाई के साथ प्राणीमात्रा का भी भला हो ऐसे विचार सम्यग्दृष्टि जीवों में दिखाई देते हैं। अज्ञानी जीवों की दो श्रेणी होती हैं। प्रथम वे जो दूसरों का सिर्फ अहित करना जानते हैं। दूसरे वे जो सिर्फ अपना भला करना जानते हैं। अच्छे जीवन के लिये हर आदमी को अपनी भलाई के साथ-साथ दूसरों की भलाई का ख्याल भी रखना चाहिये।

मन कभी अंधे की लकड़ी, कभी आँखों का चश्मा होता है। जिस प्रकार अंधे आदमी के हाथ की लकड़ी कभी यहाँ तो कभी वहाँ यानि यत्रा-तत्रा रखी जाती है। उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवों का मन कभी यहाँ कभी वहाँ यानि यत्रा-तत्रा सर्वत्रा घूमता है। कभी भी संतुष्ट और तृप्त नहीं होता। सम्यग्दृष्टि का मन आँखों का चश्मा है जिस प्रकार आँख की रोशनी जब कम हो जाती है, या दूरदृष्टि और निकट दृष्टि दोष से दूषित हो जाती है तो चश्मा

आवश्यक हो जाता है। दोष भी चश्मे से दूर हो जाता है। नजर ठीक हो जाती है इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का मन सदैव आत्मा के दोषों को दूर करता है। जिससे आत्मा शुद्ध होकर परमात्मा हो जाती है।

जिसका मन स्थिर हो जाता है, उसका जीवन भी मोक्ष सुख में स्थिरता को प्राप्त होता है। जब जीवन में संतोष आता है, तो मन स्वतः ही स्थिर होने लगता है। मन की स्थिरता से ही जीवन में संतोष और सन्यास की घटना घटित होती है। मन की अस्थिरता से असंतोष जन्मता है। असंतोष की वृत्ति मन को चंचल करती है। चंचल मन सत्य, शांति और आनंद से दूर करता है।

भेदविज्ञान से उपजता है समष्टि के प्रति प्रेम

वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। वस्तु स्वभाव की पहिचान के अभाव में धर्म की प्राप्ति नहीं होती। धर्म के नाम पर परंपराओं का निर्वाह अनादि से अज्ञान वश किया जाता रहा, किन्तु परंपराओं का निर्वाह धर्म नहीं--धोखा है। धर्म, परंपराओं को ध्वस्त कर अपनी यथार्थ चमक को बिखेरता है। परम्परा जीवन को गर्त की दिशा में ले जाती हैं। इसलिये परम्पराओं की मुक्ति पर धर्म का उदय होता है।, जो वस्तु स्वभाव का परिचायक है।

दुःखों से भयभीत जीव जब धर्मस्थलों में धर्म का पालन करता है, तो अक्सर धर्म का स्वरूप न जानकर परम्पराओं का पोषक बन जाता है और अपने को धर्मात्मा मानने लगता है। धर्म तो वस्तु स्वभाव है, जब तक वस्तु स्वभाव समझ में नहीं आता, तब तक जीव कितना भी धर्म परम्पराओं का निर्वाह करे, उसे धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। धर्म की उपलब्धि के अभाव में दुःखों से मुक्ति की बात हास्यास्पद है।

वस्तुस्वभाव रूप धर्म की साधक परम्परा ही निर्वाह के योग्य है। वस्तु स्वभाव रूप धर्म को समझ लेने के बाद साधक परम्परा भी धर्म नाम को प्राप्त होती है। कारण में कार्य का उपचार करके इस परम्परा का पालन भी आत्मार्थी पुरुष को करना पड़ता है। संसार सागर में भटके हुये जीव को आत्मसुख की भावना करनी चाहिये। आत्म सुख की प्राप्ति के लिये आत्मधर्म का पालन करना, तदनुरूप पुरुषार्थ करना आवश्यक होता है।

धर्म के नाम पर घृणा का होना अधर्मी होने का परिचय है। जब तक जीव को भेदविज्ञान नहीं हुआ तब तक घृणा को छोड़ नहीं सकता। भेदविज्ञान से समष्टि के प्रति प्रेमभाव उपजता है। भेदविज्ञान के अभाव में प्रेम का होना अशुभ राग है। भेदविज्ञानपूर्वक समष्टि के प्रति जो प्रेम का भाव उत्पन्न होता है, उसमें समस्त

जीवों के कल्याण का शुभ भाव ही निहित होता है। अतः जीवन में सर्वजीवों के कल्याण का भाव रखने वाला भेदविज्ञानी जीव धर्मध्यान को प्राप्त हुआ कर्तव्य का पालन करनेवाला धर्मात्मा पुरुष कहलाता है।

ॐ

मन के मालिक बनें, मन को मालिक न बनायें

मन की चंचलता आत्मा को कर्मों से बाँधती है। मन की गति को मापना किसी भी यंत्रा से संभव नहीं है। मन पल-पल में स्थान बदलता है। मन को रोकना मनुष्य के लिये बड़े श्रम का काम है। जिसने अपने मन को रोकना सीख लिया, उसने अपने जीवन को खुशियों का उपहार भेंट किया है। मन को नियंत्राण में करना जितना कठिन है, उससे भी ज्यादा कठिन है मन को चंचल करने वाले निमित्तों से बचाना। जब तक इन अशुभ निमित्तों का त्याग संकल्प के सरोवर में स्नान नहीं करता, तब तक मन की चंचलता समाप्त नहीं होती। मन की निर्मलता ही सच्चे सुख की प्राप्ति का मार्ग है।

जो योगी मन को समाहित कर लेता है वह चारित्रा को दृढ़ता से पालता है। जिसका मन चंचल होता है वह चारित्रा की शुद्धि को प्राप्त नहीं हो पाता। वचन और काय से समृद्ध योगी जब तक मन की स्वच्छंदता पर अंकुश नहीं लगाता तब तक वह साधना के नाम पर मात्रा चलनी में पानी भरने का अप्रयोजनीय श्रम करता है। स्वच्छंद मन संस्कारहीन दुष्ट अश्व की तरह होता है, जो चलता तो बहुत है किन्तु पहुँचता कभी नहीं मंजिल की उपलब्धि मन के मालिक स्वयं बनने से हो सकती है। अभी तो मन हमारा मालिक बन बैठा है, जो हमारी सुखमय जिंदगी को तबाह कर रहा है। हमें चाहिये कि हम मन के मालिक बनें, मन को अपना मालिक न बनायें। मन को मालिक बनाने का अर्थ है अपने आत्मगुण रूपी खजाने की चाबियाँ मन को सौंप देना। मन उद्दण्ड है, मन अधम है, मन पापी है, मन धोखेबाज है। मन को वश में रखना ही मालिक बनना है।

ॐ

कर्म दुनियाँ का सबसे बड़ा न्यायाधीश है

अच्छे कर्म ही हमारे सौभाग्य का निर्माण करते हैं। हमारा भाग्य कोई दूसरा नहीं लिखता। हम ही अपना भाग्य निर्मापित करते हैं। जब हम अच्छे कर्म करते हैं, तो जीवन में उन्नति होती है। जब हम अच्छे कर्म नहीं करते, तो जीवन में उन्नति रुक जाती है। जब हम बुरे कर्म करते हैं, तो जीवन में अवनति होना शुरु हो जाती है। जब हम बुरे कर्म नहीं करते, तो हमारी अवनति रुक जाती है।

चोरी करने वाला यदि चौर्यकार्य में सफलता को प्राप्त होता है, तो इसको देखकर कभी चौर्यकार्य में उत्सुक मत होना। चोरी एक अशुभ कार्य है। समय आने पर उसका परिणाम दुःख है। धर्म कार्य को करने वाला धर्मात्मा यदि अपने कार्य में असफल भी हुआ है, तो उसके देखकर धर्म से मुख मत मोड़ना। धर्म करना एक शुभकार्य है। सच तो ये है, कि चोरी में सफलता भी जीवन में असफलता है, और धर्म कार्य में असफलता आने पर भी जीवन में सफलता है। धर्म करने का परिणाम सुख प्राप्ति है।

कर्म दुनियाँ का सबसे बड़ा न्यायाधीश है। कर्म कभी ऊँच-नीच का भेद नहीं करता। कर्म तो भावों के अनुरूप फल देता है। कर्म के लिये कभी रिश्वत नहीं दी जाती। कर्म कभी रिश्वत को स्वीकारता भी नहीं है। कौन गरीब कौन अमीर, इस बात से कर्म को कोई अपेक्षा नहीं होती। हमें अपने भावों को पवित्रा रखना चाहिये। जिससे कर्म दुःखदायी न हों। हमारे शुभ-अशुभ परिणाम ही सुख-दुःख को निमन्त्राण देते हैं।

ॐ

सुख खजाने में नहीं निजात्मा में खो जाने में है

सच्चा सुख बाहर में खोजने से नहीं मिलता। वस्तुओं में सुख नहीं अपितु सुख का भ्रम है। वस्तुओं का आकर्षण आत्मा को पतन के रास्ते पर ले जाता है। आत्मा का पर वस्तुओं में सुख मानकर आकर्षित होना अज्ञान कहलाता है। जब तक इस अज्ञान भाव का नाश नहीं होता, तब तक आत्मा भी सुखी नहीं बनता। सच्चा सुख खजाने में नहीं, निजात्मा में खो जाने में मिलता है। अतः खजाने की चाह न कर निजात्मा में खो जाने की चाह करना चाहिये।

घर तो सभी को मिला है। लेकिन मोहरूपी अंधकार में अंधे मनुष्यों को अपने आत्मारूपी निज घर का दर्शन नहीं होता। अंधकार में आँख होने पर भी दिखाई नहीं देता। अतः एक छोटा-सा टिमटिमाता हुआ दीप अगर ईजाद कर लिया जाये, तो घर में व्याप्त अंधकार नाश को प्राप्त हो सकता है। मनुष्य घर बनाने में जुटा है, किन्तु दीप जलाने का पुरुषार्थ नहीं करता।

द्वीप जलाने के लिये हमें बाती और तेल की भी आवश्यकता पड़ती है। ज्ञान की बाती और पुण्य का तेल ही दीप को जलाने में समर्थ हैं। पुण्यहीन व्यक्ति धर्म की आराधना नहीं कर पाता। पुण्य सदैव धर्मात्मा से मिलन कराता है। पुण्य धर्म की शरण में पहुँचाने के लिये नाव की तरह होता है। जिन्हें संसार सागर से पार होने की लगन लगी है, वे महान पुरुष शुद्धात्म भावना को प्राप्त होकर पुण्य को साधते हैं। ऐसा पुण्य ही धर्म का साधक बनकर वस्तु स्वरूप को उपलब्ध कराता है।

पुण्य का फल अरिहन्त पद की प्राप्ति होना है। अर्थात् जिसने शुद्धात्म स्वरूप को साधने के लिये बहिरंग कारणभूत पुण्य को भी नहीं छोड़ा। अपितु पाप को छोड़ने के लिये पुण्य क्रिया को स्वीकार किया। शुद्धात्म स्वरूप की प्राप्ति के लिये पुण्य साधक शुभोपयोग

को स्वीकार किया। ऐसे शुद्धात्म स्वरूप को साधने वाले पुण्यात्मा भव्यजीवों को ही अरिहन्त पद की प्राप्ति होती है। सर्वथा पुण्य से अरिहन्त पद की प्राप्ति कहना मिथ्या है, और सर्वथा बहिरंग कारणभूत पुण्य को हेय कर अरिहन्त पद की प्राप्ति कहना भी मिथ्या है। अतः अंतरंग और बहिरंग दोनों कारणों के मिलने से ही अरिहंत बनते हैं।

आदमी का मन मोबाइल की तरह है। आदमी जहाँ होता है अपने प्रिय की याद आने पर, अपने आवश्यक कार्य को करने के लिये, वहीं से मोबाइल लगा देता है, और अपने कार्य को सम्पन्न कर आनंदित होता है। इसी प्रकार आदमी का मन है, जैसे ही अपने प्रिय की याद आती है तो उसी की स्मृति में खो जाता है, मन का तार जुड़ जाता है और प्रेम की बातें भी प्रारंभ हो जाती हैं, किन्तु जब यथार्थ के धरातल पर उतरता है तो प्रिय से अपने को पृथक् पाने के कारण याद में दुःखी होता है, अतः मन रूपी मोबाइल जितने समय तक बंद रखा जाये, जीवन में उतना ही श्रेयस्कर है।

आज आदमी के जीवन में तनाव, अवसाद, कुंठा का भाव अक्सर देखा जाता है, और उसका एक ही कारण है मन की असीम आकांक्षायें। अगर आदमी आकांक्षाओं से मन को रिक्त करने का प्रबल पुरुषार्थ करे, तो सुख का स्वाद जीवन में सहज ही प्राप्त हो सकता है। आकांक्षायें आकुलता को जन्म देती हैं, और दुःख का मूल कारण आकुलता ही है। आकुलता की निवृत्ति के लिये हमें आकांक्षाओं से निर्वृत्त होना होगा। वस्तु के त्याग से ही आकांक्षा समाप्त हो सकती है, अतः त्यागभाव को जीवन में अपनाना होगा।

राग-द्वेष में जीना अपने आत्मसुख को ही खोना हे। आत्म सुख से बड़ा अनात्म सुख नहीं हो सकता। पदार्थ से सुख की कामना पागलपन है। पदार्थ में सुख नहीं अपितु पदार्थ को त्यागकर परमार्थ को पाने में ही सच्चा सुख है। आदमी को सच्चे

सुख की पहचान नहीं है, इसलिये पदार्थ में अच्छा-बुरा का भेदभाव करता है। हमें ज्ञान को सम्यक् बनाना होगा, जिससे हम सच्चे की पहचान कर सकें जब तक मनुष्य मोबाइल की तरह मन को अपनाये रहेगा, तब तक स्वयं से साक्षात्कार नहीं किया जा सकता।

ॐ

प्रशंसा की चाह इंसान को लक्ष्य से भटका देती है

मनुष्य का मन प्रशंसा की चाह करता है। प्रशंसा मनुष्य के मन की कमजोरी है। प्रशंसा की चाह इंसान को लक्ष्य से भटका देती है। प्रशंसा से मनुष्य प्रमादी हो जाता है। प्रशंसा की चाह रखने वाले लोग कभी मंजिल को उपलब्ध नहीं होते। इसलिये प्रशंसा के जाल में न फँसकर हमें अपने लक्ष्य की ओर गतिशील रहना चाहिये।

जिसे अपने कर्म और भाग्य पर विश्वास होता है, वह कभी प्रशंसा के मकड़जाल में नहीं फँसता। प्रशंसा को मार्ग का अवरोधक समझता है। प्रशंसा में सत्य नहीं होता, जो सत्य होता है, वह स्वयं प्रशंसा प्राप्त कर लेता है। हमें सदैव सत्य की चाह करना चाहिये, जिससे शांति प्राप्त हो सके। प्रकृति प्रशंसा नहीं परोपकार करना कर्तव्य समझती है। विकृति प्रशंसा से पुलकित होती है। मनुष्य का मन जब प्रकृति से जुड़ता है तो सत्य प्रकट होता है। जब विकृति से जुड़ता है, तो प्रशंसा के शूलों की चुभन मिलती है।

दुनियाँ प्रशंसा को फूल और निंदा को शूल समझती है, जो जीवन की सबसे बड़ी भूल है। यदि सच कहें तो प्रशंसा शूल और निंदा फूल है। प्रशंसा की उपलब्धि होने पर मनुष्य में तृष्णा जन्मती है। प्रशंसा मिलने पर प्रशंसा की प्यास बढ़ जाती है, जबकि निंदा मिलने पर पुनः निंदा की चाह कोई नहीं करता। निंदा मनुष्य को प्रशंसा से मुक्त कर जीवन बोध की शिक्षा देती है। हमें निंदा होने पर बोध से भरना चाहिये। प्रशंसा होने पर साम्य को प्राप्त करना चाहिये। जो आनन्द की चाह रखता है, उसे प्रशंसा की चाह कभी नहीं करना चाहिये।

ॐ

सूर्य किरण और परमात्म नाम अंधकार के नाशक

परमात्मा का नाम श्रद्धा भक्ति से स्मरण किया जाये, तो पाप कर्मों का समापन सहज ही हो जाता है। परमात्मा के नाम में वह शक्ति विद्यमान है जो हमारी आत्मा को पवित्रा बना सकती है। परमात्मा की स्तुति आराधना तो पाप कर्मों की नाशक है ही। परमात्म नाम से भी पापकर्म भयभीत होकर पलायन कर जाते हैं। संसारी जीव अनादि से पापकर्मों का ही उपार्जन करने में लगे हैं। इसी कारण संसार के दुःखों से मुक्ति नहीं मिल रही। अगर वास्तव में दुःख मुक्ति चाहते हो तो पापकर्म का अन्त करना होगा। पापकर्म एकमात्रा परमात्म भक्ति और प्रभु के पवित्रा नाम के स्मरण से ही नाश को प्राप्त होते हैं अतः जीते जी इस जीवन में सभी को परमात्मा की भक्ति आराधना के लिये तत्पर होना चाहिये जिससे इस लोक तथा परलोक में सुख की प्राप्ति तथा परम्परा से मोक्ष की उपलब्धि हो।

हनुमान ने राम नाम की श्रद्धा से ही पानी में पत्थर तैरा दिये। जबकि राम के हाथ से छूटने वाले पत्थर पानी में डूब गये। अंजनचोर ने णमोकार मंत्रा की आराधना से विद्या सिद्ध कर ली। णमोकार मंत्रा में पंचरमेष्ठी के गुणों का स्तवन नहीं अपितु पंचपरमेष्ठी को नमस्कार किया गया है। अंजनचोर ने सच्चीश्रद्धा से नाम जाप किया, और संसार सागर से पार होकर निर्वाण को प्राप्त कर लिया। जब परमात्म नाम से अंजनचोर पार हो सकता है। हनुमान के पत्थर तैर सकते हैं, तो हमारी आत्मा जो पापकर्मों से भारी होकर संसार में डूब रही है वह क्यों नहीं तैरेगी अर्थात् अवश्य ही तैरेगी। हमें मंदिर, दुकान, मकान राह में सदैव परमात्म नाम और णमोकार मंत्रा जपते रहना चाहिये। जिससे आत्मा पवित्राता को प्राप्तकर परमात्मा बन सके।

ॐ

भोग में आकर्षण प्रेम नहीं आत्मा से विद्रोह है

आकर्षण का परिणाम दुःख है। चित्त में आकर्षित होने की विकृति है। आकर्षण के द्वार हमारी इन्दियाँ हैं। इन्द्रियों की खिड़कियों से मन झाँकता है। जिस वस्तु को भी चित्त देखता है, उसके प्रति आकर्षित हो जाता है। चित्त का वस्तु के प्रति आकर्षित होना राग है। वस्तु किसी को आकर्षित नहीं करती, राग के कारण वस्तु में आकर्षण दिखाई देता है। वस्तु का स्वभाव आकर्षण या विकर्षण से अच्छा या बुरा नहीं होता। मन ही राग के कारण वस्तु में अच्छे या बुरे की कल्पना करता है। हमारी यह झूठी कल्पनायें सुख या दुःख के रूप में साकार होती हैं।

आकर्षित होना चित्त का स्वभाव है। यदि चित्त देह को देखेगा, रूप को देखेगा । पदार्थ को देखेगा। झील, नदी, समुद्र को देखेगा तो उसी के प्रति आकर्षित हो जायेगा। इन वस्तुओं में रमने, पाने, निकट होने के लिये मचल उठेगा। यदि चित्त को इन वस्तुओं से रोककर परमात्मा की भक्ति, आराधना में लगा दिया जाये, तो निश्चित ही चित्त परमात्मा में आकर्षित होगा। चित्त को आकर्षित होने के लिये आधार चाहिये। जिंद खाली नहीं बैठता, कुछ न कुछ कार्य चाहिये। अच्छा कार्य दो तो अच्छा करेगा। बुरा कार्य दो, तो बुरा कार्य करेगा। इसी प्रकार मन का स्वभाव है। उसे परमात्म भक्ति में लगाओगे, तो धीरे-धीरे परमात्मा के प्रति आकर्षित होगा। यदि पदार्थ में लगाओगे, तो पदार्थ में आकर्षित होगा। मोहनीय कर्म जब तक जिंदा है, मन का आकर्षित होना तब तक चलता रहेगा। मोहनीय कर्म को मारने के लिये चित्त को भक्ति आराधना में आकर्षित कराना होगा।

जीवन थोड़ा है। पदार्थ के प्रलोभन में व्यर्थ ही खो रहा है। रूप के आकर्षण में चित्त तड़प रहा है। जीवन का आनन्द देह की चिन्ता में जल रहा है। अन्तस के सौंदर्य को भी पहिचानो। आत्मा में चित्त को आकर्षित करो। भोग का परिणाम सुख नहीं दुःख है। भोग में शान्ति नहीं अशान्ति है। भोग में प्रेम नहीं आत्मा से विद्रोह है। सज्जनों की आसक्ति भक्ति में, दुर्जनों की भोग में होती है।

लाभ के लिये नहीं तृप्ति के लिये जिओ

आदमी का हर कृत्य, हर कर्म लाभ के लिये है। आदमी सोता है तो लाभ के लिये। जागता है तो लाभ के लिये। खाता है तो लाभ के लिये। पीता है तो लाभ के लिये। हँसता है तो लाभ के लिये। रोता है तो लाभ के लिये। पढ़ता है तो लाभ के लिये। लड़ता है, झगड़ता है तो लाभ के लिये। दुकान करता है तो लाभ के लिये। नौकरी करता है तो लाभ के लिये। शादी करता है तो लाभ के लिये। बच्चे पैदा करता है तो लाभ के लिये। घर गृहस्थी बनाता है तो लाभ के लिये। दौड़ धूप करता है तो लाभ के लिये, और जीता है तो लाभ के लिये। मरता है तो लाभ के लिये। यहाँ आदमी का सम्पूर्ण जीवन लाभ के लिये समर्पित है। अमूल्य जीवन लाभ के लिये समर्पित है। लाभ की आकांक्षा बुद्धि की विकलांगता का प्रमाण पत्रा है।

लाभ में जीनेवाला सिर्फ बेहोशी में जीता है। बेहोश आदमी को नहलाओ तो मना नहीं करेगा। सुबह-सुबह घुमा लाओ तो मना नहीं करेगा। बिस्तर पे सुलाओ तो मना नहीं करेगा। क्रीम-पाउडर लगाओ तो मना नहीं करेगा। क्योंकि उसके पास विचार करने की क्षमता शक्ति है ही नहीं। इसी प्रकार जो लाभ में जीता है, वह भी कभी इतना विचार नहीं कर पाता, कि लाभ होने से क्या मिला। लाभ अतृप्ति को बढ़ाता है। आज तक कोई भी व्यापारी तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ। कोई भी दुकानदार तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ। जीवन भर लाभ की अंधी अतृप्ति में जीना ही आज मनुष्य की नियति हो गई है।

सुख लाभ में नहीं तृप्ति में हैं। लाभ के बाद जीवन में अलाभ का अलार्म बज सकता है। लाभ के बाद अलाभ की हरी झंडी मिल सकती है। लाभ के बाद अलाभ की आँधी आ सकती है। लाभ के बाद अलाभ से मिलन, साक्षात्कार हो सकता है, किन्तु

तृप्ति के बाद अतृप्ति का आना संभव नहीं है। अतृप्ति के बाद तृप्ति आ सकती है, किन्तु तृप्ति के बाद अतृप्ति घी के बाद दूध, मुक्ति के बाद संसार में नियुक्ति असंभव है। इसलिये लाभ में नहीं अपितु तृप्ति में जिओ। लाभ के लिये नहीं तृप्ति के लिये जिओ।

सामायिक तृप्ति के लिये है। ध्यान तृप्ति के लिये है। समाधि तृप्ति के लिये है। त्याग तृप्ति के लिये है। ब्रह्मचर्य तृप्ति के लिये है। रत्नत्राय तृप्ति के लिये है। परमात्मा की पूजा, आराधना, उपासना यदि निष्काम भाव से की जाये, तो वह तृप्ति का कारण बन जाती है। इसलिये जीवन में अगर तृप्ति का अनुभव करना है। तो त्याग में जिओ। ध्यान में बैठो। सामायिक में लीन होओ। जीवन लाभ के साथ-साथ तृप्ति को भी उपलब्ध हो जायेगा।

ॐ

ज्ञान का अहंकार अज्ञान से ज्यादा खतरनाक

अज्ञान उतना खतरनाक नहीं होता जितना ज्ञान का अहंकार खतरनाक है। अज्ञानी इस बात को स्वीकार कर लेता है, कि हमें कुछ समझ नहीं। हमारे अंदर बुद्धि, विवेक, ज्ञान नहीं। अज्ञानी की यह समझ ही ज्ञान प्राप्ति की गहन प्यास बन जाती है। अज्ञानी ही ज्ञान की उपलब्धि करता है। ज्ञान का अहंकार करने वाला ज्ञानी वास्तव में अज्ञानी है, और मजे की बात ये है कि ज्ञान का अहंकार मनुष्य को ज्ञानी बनाने में बहुत बड़ी बाधा है।

इस दुनियाँ में दो प्रकार के लोग होते हैं कुछ लोग सत्य को अपने अनुसार चलाना चाहते हैं। सत्य को गुलाम और स्वयं को मालिक बनाना चाहते हैं। जबकि सत्य को मालिक बनाकर ही स्वयं को मालिक बनाया जा सकता है। कुछ लोग सत्य के अनुसार चलना चाहते हैं। सत्य जहाँ ले जाये वहाँ जाने को राजी होते हैं। सत्य के प्रति यह समर्पण ही परम सत्य को निमंत्राण है। सत्य के अनुसार चलने वाले ही निर्वाण को प्राप्त होते हैं। सत्य को अपने अनुसार चलाने वाले अपने को वकील बना रहे हैं। वकील की शरण में जो भी पहुँचता है, वकील उसे आश्वस्त करता है, कि तुम्हें जिताऊँगा। वकील सत्य की काँट-छाँट करता है। अपने शरणागत के पक्ष में कानून को खड़ा करता है। ऐसा ज्ञान सत्य के अनुसार नहीं अपितु सत्य को अपने अनुसार चलाता है। यह ज्ञान आत्मा के पतन का कारण है। आत्मोन्नति के लिये सत्य को अपना साथी बनाना होगा।

ॐ

मोह ब्राण्ड शराब सबसे ज्यादा नशीली है

मोह की मस्ती में जीने वालों को धर्म की बस्ती नहीं मिलती। मोह की मदिरा सबसे पुरानी है। मनुष्य मोह की शराब पीकर ही जन्म लेता है। संसारी प्राणी मोह की शराब पीकर चतुर्गति में जन्मता है। दुनियाँ में शराब पीकर मरने वाले लोग बहुत हैं। यह बात हर कोई जानता है, किन्तु शराब पीकर सारी दुनियाँ जन्म लेती है यह सभी को आश्चर्य में डालने वाली बात है। मोह की शराब का नशा संसारी प्राणी का कभी नहीं उतरता, क्योंकि मोह ब्राण्ड शराब सबसे ज्यादा नशीली है।

मोह धर्म का जन्मजात शत्रु है। सर्प और नेवला में मित्राता हो सकती है। सिंह और हिरण में मित्राता हो सकती है। लोमड़ी और सियार भी मैत्रीभाव को जन्म दे सकते हैं। प्रकाश और अंधंकार भी मित्रा हो सकते हैं किन्तु मोह और धर्म में मित्राता त्रिाकाल में भी नहीं हो सकती। मोह के कारण ही धर्म की आहूति दी जा रही है। मोह के स्वर धर्म के पियानों पर नहीं बजते। धर्म तो आत्मा का स्वभाव है। मोही आत्मस्वभाव की पहिचान नहीं कर पाता । स्वयं को भूलकर वनवासी सा जीवन मोह का फल है।

मोहभाव के कारण मनुष्य पर पदार्थों को अपना मानते हैं। पर पदार्थों के लिये लड़ते-झगड़ते है। पर पदार्थों को पाकर आनंदित होते हैं, किन्तु परवस्तु का संयोग जो क्षणिक है। आत्मस्वभाव से भिन्न है। मोही जीव उस भिन्नता की पहिचान नहीं कर पाते। मोह बेहोशी लाता है। मोह आत्मसत्ता से मिलने नहीं देता। मोह संसार की दरिया में डुबाता है। मोह संसार में आकर्षण पैदा करता है। मोह देह के काँटों पर सुलाता है। रिश्तों का बगीचा लगाता है। अपने साथियों के बिछुड़ने पर मोह आँसु बहाता है। मोह के कारण ही प्रत्येक जीवात्मा संसार में दुःखी है।

बीयर, रम, व्हिस्की, पीनवाले परिवार के हत्यारे हैं। समाज

के शत्रु हैं, देश के दुश्मन हैं। क्योंकि शराब पीने वाले उच्छृंखल होकर, बेहोशी में अपने परिवार तक उजाड़ देते हैं, किन्तु जो मोह की शराब पीकर झूम रहे हैं, वे अपनी आत्मा के दुश्मन हैं। जो अपना दुश्मन है, वह दूसरों का प्रेमी नही हो सकता। मोह के आंगन में राग-द्वेष की कंटीली झाड़ियाँ ही उगती हैं। जितने भी महापुरुष हुये पुराण पुरुष हुये। तीर्थंकर हुये। सभी ने मोह को छोड़ा। मोह के बंधन को तोड़ा। तभी भगवत्ता का आनन्द अवतरित कर सके। मोह तो भगवत्ता पर कड़ा पहरा है। मोह बुद्धि को विकृत करता है। असत्य को सत्य का लिबास पहनाता है।

ॐ

विवेक जिंदा आदमी की निशानी है

मनुष्य अवगुणों का पिण्ड है। परमात्मा सद्गुणों की जीती जागती तस्वीर है। दोनों मनुष्य और परमात्मा के मध्य संतात्मा अवगुण से सद्गुण की ओर बहनेवाली नदी की तरह हैं। अवगुणों के साथ जन्म लेना दुर्भाग्य नहीं अपितु अवगुणों को छोड़े बिना ही मरण को प्राप्त हो जाना दुर्भाग्य है। मनुष्य चाहे तो अपने दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदल सकता है। जो मनुष्य अवगुणों से मुक्त होकर सद्गुणों में जीना सीख लेते हैं वे ही विवेकी हैं। विवेक जीवन में नई क्रांति लाता है। विवेक आन्तरिक रूपान्तरण का विज्ञान है। विवेक से धर्म में प्रवेश संभव है। विवेकहीन व्यक्ति का धर्म कोरा परिश्रम है। विवेक से मन की दिशा में परिवर्तन किया जा सकता है। विवेक जीवन का बदलाव ही नहीं अपितु संजीवनी बूटी है। विवेक जिंदा आदमी की निशानी है।

विवेक बुराईयों से बचाता है। विवेकी पुरुष अपने अवगुणों को यानि क्रोध को क्षमा, मान को विनय, माया को सरलता और लोभ को संतोष गुणों में बदल लेता है। विवेक का अंकुश विकृतियों को उसी प्रकार नियंत्रित कर लेता है जिस प्रकार महावत का अंकुश हाथी को नियंत्रित करता है। विवेक मस्तिष्क की खुजली नहीं दिल की आवाज है। विवेक वक्त की माँग नहीं श्रेष्ठ जीवन का सुहाग है। विवेक मुर्गे की कलगी नहीं प्रभात में दी जाने वाली मुर्गे की बाँग है। जिसमें जागरण और आचरण का संदेश छिपा है। विवेक कोरी पहेली नहीं सम्यक् जीवन की सहेली है। विवेक ही मनुष्य का सच्चा साथी है। जो प्रतिकूलताओं में भी जीने की कला सिखाता है। विवेक बचपन में उंगली, यौवन में पत्नी और बुढ़ापे में लकड़ी का सहारा है। इसलिये मनुष्यों को चाहिये कि जीवन का निर्वाह नहीं अपितु विवेक पूर्वक जीवन का निर्माण करें।

गाड़ी में ब्रेक होना आवश्यक है। जीवन की गाड़ी में विवेक

होना आवश्यक है। बिना ब्रेक की गाड़ी कितनी भी अच्छी और कीमती क्यों न हो किन्तु उसे कोई भी समझदार व्यक्ति स्वीकार नहीं कर सकता। इसीप्रकार अगर जीवन की गाड़ी में विवेक न हो, तो वह अवश्य ही विवाद का कारण हो सकता है। विवेक के दर्पण में चित और चरित्रा का दर्शन होता है। विवेक सुख शांति और आनन्द का पथ है। विवेक मन को ईश्वर और तन को मंदिर बना देता है। आज का विवेक ही कल का सौभाग्य है। सत्य की खोज में विवेक की अहम् भूमिका होती है। परिवार में संतुलन विवेक की तुला से ही बनाया जा सकता है। जो विवेक को स्वीकार करता है, परमात्मा भी उसे स्वीकार कर लेता है।

ॐ

अज्ञान का समाप्त हो जाना ही सच्चा सुख है

ज्ञान दृष्टि से अज्ञान का नाश होता है अज्ञान ही दुःख का मूल कारण है। अज्ञान का समाप्त हो जाना ही सच्चा सुख है। अज्ञान के कारण ही मनुष्य और पशु को समान कह दिया जाता है, और मजे की बात ये है, कि अज्ञानी मनुष्य को पशु तो कहा जाता है किन्तु पशु को मनुष्य की उपमा नहीं दी जाती है।

ज्ञान से ही हमें आत्मा का बोध होता है। ज्ञान आत्मा के सम्पूर्ण प्रदेशों में समाया हुआ है। आत्मज्ञान का जागरण करने के लिये हमें आत्मज्ञानी गुरुजनों और शास्त्रों की विनय और अध्ययन को प्राप्त होना पड़ता है। जो आत्मज्ञान, चारित्रा को उपलब्ध हो जाता है। वह परमसुख बन जाता है। चारित्राहीन ज्ञान मात्रा दिमाग की कसरत है। चारित्रा सहित ज्ञान ही मोक्ष का परम सौंदर्य प्रदान करता है। सम्यग्ज्ञान से हित-अहित का विवेक जागता है। सम्यग्ज्ञान की ज्योति हमारा मार्ग ही नहीं अपितु मंजिल का भी दर्शन कराती है।

मौत का अंधकार जीवन में पदार्पण करे, उसके पूर्व आत्मज्ञान का मंगलदीप प्रज्ज्वलित कर लेना चाहिये। रोशनी साथ हो, तो अंधकार कभी भूलकर भी नहीं आता। जीवन जीने का नाम संसार है, और सुखी जीवन जीते रहने का नाम मोक्ष। ज्ञान का सुदीप हमें बुराईयों से बचाता है, चारित्रा का दीप हमें सद्मार्ग पर ले जाता है। सम्यग्दर्शन का दीप हमें आस्था से चलायमान नहीं होने देता। जहाँ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रा तीनों ही दीप एक हो जाते हैं, वहाँ पर ही परमात्मा का दर्शन होता है।

ॐ

श्रेष्ठ आचरण मानव को सर्वश्रेष्ठ बनाता है

आज आदमी समस्त प्राणियों में इसलिये श्रेष्ठ है, क्योंकि पूर्व में ज्येष्ठ लोगों ने कुछ श्रेष्ठ कार्य किये हैं। पूर्वजों के ज्येष्ठ भी श्रेष्ठ कार्य करके आदमी होने का परिचय देकर इस दुनियाँ से विदा हुये। हमारे ज्येष्ठ पूर्वजों की श्रेष्ठता ने आज आदमी को एक अलग पहचान दी है। जिसको सुरक्षित रखना ही हमारे श्रेष्ठ जीवन का परिचय है।

जन्म से आदमी श्रेष्ठ नहीं होता, अपितु जीवन को श्रेष्ठ ढंग से जीने वाले लोग ही श्रेष्ठ होते हैं। इसलिये आदमी को जीवन जीने का तरीका संतों से सीखना चाहिये। क्योंकि मानव जाति में संत ही श्रेष्ठ जीवन जीकर जन-मन के आदर्श होते हैं। संत ही सच्चे अर्थों में अपने ज्येष्ठ पूर्वजों की धरोहर को संरक्षित और सुरक्षित रखते हैं, इसलिये संतों की संगति में आकर आदर्श जीवन की प्रगति और उन्नति करनी चाहिये। श्रेष्ठ आचरण आदमी को सर्वश्रेष्ठ बनाता है।

हमारे पूर्वज वह लोग नहीं है जिन्होंने जन्म लिया, खाया-पिया, सन्तान पैदा की, और तड़प-तड़प कर मर गये। अपितु हमारे पूर्वज तो वह महापुरुष हैं, जिनका जन्म-गर्म-तप-ज्ञान और निर्वाण कल्याणक तीनों लोकों को सुखदायी हुये। हमारे जीवन को धर्म की सौरभ से महकाने वाले ही हमारे पूर्वज हैं। जो हमें धर्म नहीं दे सकते वे हमारे पूर्वज नहीं अपितु पूर्व के दुश्मन हैं, जो अपना पूर्व का हिसाब पूरा करने आये थे। धर्म को देने वाले पूर्वज तीन लोक पूज्य हैं।

हम अपना जीवन कुछ इस तरह से जियें कि जब इस दुनियाँ से विदा हों, तो लोगों की प्रसन्नता में अश्रुपूरित आँख और विनय से जुड़े हुये हाथ अलविदा कहें। हमारे आदर्शमयी जीवन से कुछ

प्रेरणा लें और सुसंस्कारों से श्रेष्ठ जीवन का आगाज करें। आप आगामी पीढ़ी को अपने जीवन के कौन से आदर्श धरोहर के रूप में देकर इस दुनियाँ को अलविदा कहेंगे, यह विचार सच्चे मन से जरूर करें।

मन की शान्ति ही अमन की उपलब्धि

हर इंसान की चाहत है, कि जीवन में हर सुबह अमन का पैगाम लेकर आये। इसके लिये आवश्यक है कि हम अमन-चैन के रास्ते का चुनाव करें। अमन की दिली ख्वाहिश रखने से अमन की प्राप्ति का सिर्फ उद्देश्य निर्धारित होता है अमन की प्राप्ति नहीं होती, जबकि अमन का रास्ता अख्तियार कर लिया जाये तो निश्चित ही तुम्हारी अगली सुबह अमन की मंजिल पर होगी।

अमन की चाह आदमी को परमात्मा की राह पर ले जाती है। परमात्मा होना जीवन में कोई मुश्किल की बात नहीं है अपितु परमात्मा होने की च्तवेमे (विधि) की उपलब्धि ही कठिन होती है। परमात्मा होने के लिये सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रा रूपी रत्नत्राय की उपलब्धि करना होती है। यह उपलब्धि अगर जीवन में प्रकट हो जाये, तो आत्मा की परम और चरम दशा भगवत्ता की प्राप्ति हो जाती है।

अमन हर आदमी के भीतर छुपा है। अगर वास्तव में आदमी अमन का इच्छुक है, तो उसे अमन बाहर नहीं अपितु अपने भीतर ही खोजना चाहिये। बाहर अमन नहीं अपितु अमन की आशा होती है, जो कभी भी पूर्ण नहीं होती। जितना पूर्ण करने का पुरुषार्थ किया जाता है, उतना वास्तविक जीवन से टूटता चला जाता है। जो आदमी अपनी आत्मा में अमन की खोज करता है, वह अमन की शाश्वतता को प्राप्त कर लेता है।

मन की शांति ही अमन की उपलब्धि है। जब तक मन अशांत है तब तक अमन का खजाना प्राप्त नहीं किया जा सकता, जैसे ही मन शान्त होता है अमन की स्वभावदशा प्रकट हो जाती है। मन की शांति ही मानव पर्याय की सच्ची सफलता है। जिसने मनुष्य भव पाकर मन की शांति और अमन की प्राप्ति नहीं की,

उसका मनुष्य भव व्यर्थ है।

ॐ

तनाव मुक्ति की अचूक दवा है भगवत् भक्ति

आज तनाव आदमी के जीवन में इस कदर हावी हो गया है कि उसे अपना सम्पूर्ण जीवन बोझ-सा मालूम पड़ने लगा है। जीवन का आनंद, जीवन की पुलक जैसे मर-सी गई है, और आदमी एक जिंदा लाश बना अपने दिन गुजार रहा है। विश्व के सम्पूर्ण प्राणियों में एक मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जिसे प्रबुद्ध प्राणी कहा जा सकता है। एक मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो दुनियाँ में सर्वश्रेष्ठ जीवन जी सकता है, लेकिन सर्वश्रेष्ठ जीवन जीने की योग्यता रखने के बावजूद भी मानव सर्वश्रेष्ठ सुख, आनंद, शान्ति का अनुभव न करके, पीड़ा, त्रास, घुटन ही महसूस कर रहा है। ऐसे मनुष्यों को चाहिये कि वे अपने अमूल्य क्षणों को तनाव, पीड़ा, घुटन में नहीं अपितु असीम आनन्द की, पुलक की जिंदगी जीने के लिये प्रभुभक्ति में लयबद्ध होने का प्रयास करें।

मानसिक शांति के लिये हमें नित्य जिनेन्द्र भगवान की आराधना, भक्ति करना चाहिये। भगवान की आराधना, भक्ति करने से मन में प्रसन्नता का संचार होता है। भगवान के गुणों का स्मरण करने से अपने आत्मीक गुणों का विकास होता है, और जितने-जितने आत्मीक गुणों के सागर में हम डूबते जाते हैं, उतने संसार की विकृतियों से उत्पन्न हुये अनेक प्रकार के दुःखों, से हम मुक्त होते चले जाते हैं।

भगवान की भक्ति, गुणों का आराधन करने पर मात्रा क्षणिक दुःखों से ही नहीं, अपितु अनादि से आगत जन्म, जरा, मृत्यु जैसे महा दुखों से भी मुक्ति हो जाती है। जो तनाव पैदा करने के मुख्य कारण हैं। भगवान ने जन्म जरा मृत्यु जैसे रोगों का नाश कर दिया, इसलिये तनाव जैसे रोगों ने भी भगवान को सदा के लिये छोड़ दिया।

ॐ

कर्म की पर्तें खुलते ही परमात्मा प्रकट होता है

मनुष्य ने इतने चेहरे ईजाद कर लिये हैं, कि उसे अपना चेहरा खोजना भी कठिन हो गया है। आज मनुष्य को अपने चेहरे की पहिचान करना भी अत्यन्त कठिन कार्य हो गया है। मनुष्य सुबह कुछ होता है, दोपहर में कुछ और होता है, तथा सांझ के समय कुछ और होता है। पत्नी के सामने, माता के सामने, मनुष्य का चेहरा एक नहीं होता। जिसका चेहरा माँ और पत्नी के सामने एक-सा होता है। छल-कपट मायाचार से मुक्त होता है, उस घर में शांति का निवास होता है।

रावण को बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने के लिये कठोर साधना करनी पड़ी। भयानक उपसर्गों को सहन करना पड़ा, तब उसे विद्या की सिद्धि हुई। जब राम-रावण युद्ध हुआ, तो उस समय रावण ने विद्या से अनेक रूप बना लिये। परन्तु आज तो मनुष्य ने बिना किसी साधना, और उपसर्गों को सहन किये ही अपने अनेक रूप बना लिये हैं। जो मानवीयता को समाप्त करने वाले हैं। अगर जीवन को सुखमय बनाना है तो चेहरों की विरूपता को तिलांजलि देना होगी। सच्चे जीवन की शुरुआत असली चेहरे को पहिचान कर ही की जा सकती है।

चेतना का स्वभाव जानकर हमें अपने ज्ञान को दर्पण बनाना होगा। निज ज्ञान में निज आत्मा का प्रतिबिम्बित होना ही श्रेष्ठ ध्यान है। शाश्वत ज्ञान की उपलब्धि से भगवत्ता जन्मती है। परमात्मा की आराधना तभी तक करना चाहिये जब तक ज्ञान दर्पण नहीं बन जाता। ज्ञान के दर्पण सम बनते ही परमात्म भक्ति से मुक्त होकर निज भगवान आत्मा की भक्ति में डूबना चाहिये। ज्ञान का दर्पण बनना ही सच्ची आराधना है। कर्म की पर्तें खुलते ही परमात्मा प्रकट होता है।

जिंदगी नहीं कटती-ताकत की दवाओं से

जिंदगी तो सभी को मिलती है। जिंदगी में आनन्द सभी को नहीं मिलता। आनन्दमय जिंदगी की उपलब्धि के लिये हमें आनंद में बाधक अवस्थाओं को त्यागना होता है। बाधक कारणों के समाप्त होते ही आनन्द जीवन में उसी प्रकार प्रकट हो जाता है, जिस प्रकार बादलों के मिटने पर सूर्य का दिव्य प्रकाश अवतरित हो जाता है। असल में आदमी अपने असली आनन्द को नहीं जानता, इसलिये क्षणभंगुर आनन्द को ही परमात्मा का प्रसाद मानता है जो इंसान की सबसे बड़ी भूल है। असली आनन्द तो ज्ञानानन्द है।

वर्तमान मनुष्यों की जीवन शैली पर विचार व्यक्त करते हुये कहा--

अमन चाहते हो तुम--सुबह की हवाओं से।
जिंदगी नहीं कटती--ताकत की दवाओं से।।

हर इंसान अपने जीवन में सुख-शांति के उपाय करता है। उपाय थक जाते हैं, किन्तु इंसान नहीं थकता, और सुख की चाह करते-करते मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। सुबह की हवाओं से स्वास्थ्य नहीं मिलता। स्वास्थ्य तो स्वस्थ मन की उपलब्धि है। अगर मन बेचैन है तो सुबह कितना भी टहलना हो जाये मानसिक शांति नहीं मिल सकती। मानसिक शांति के लिये सुबह से ही हमें परमात्मा के प्रति अपनी उदार भावनाओं के साथ धन्यता का भाव जगाना चाहिये। जो व्यक्ति परमात्मा को अपने जीवन का सखा बना लेता है उसे दुनियाँ की कोई ताकत नहीं जो दुःखी कर सके? जिसका मन शांत हो जाता है, उसके लिये तन की व्याधियाँ कभी स्पर्श नहीं कर सकती।

कोई च्यवनप्राश खा रहा है, कोई होर्लिक्स पी रहा है, तो कोई ताकत के कैप्सूल खा रहा है। इससे जिंदगी नहीं कटती।

जिंदगी में जिसने भगवान के नाम की दवा, और यतीम के लिये दुआ की है उसका जीवन आपोआप सुखमय हो जाता है। मानवता के अभाव में धर्म गंधहीन पुष्प की तरह होता है। आत्मशांति के लिये आप परमात्मा के नाम का जाप करें। जिंदगी की सच्चाई को समझकर सत्य को आधार बनायें। सदैव दुःखियों की सेवा करें। सेवा करनेवाला दुनियाँ का सबसे ताकतवर इंसान है।

ईर्ष्या यौवन में भी बुढ़ापा लाती है

ईर्ष्या मनुष्य के जीवन में मानसिक अशांति लाती है। ईर्ष्या इंसान को इंसानियत के आकाश से नीचे गिरा देती है। ईर्ष्या मानव को दानव बना देती है। ईर्ष्यालु मनुष्य स्वयं ही अपनी जिंदगी को उजाड़ने वाला होता है। ईर्ष्या के आंगन में कभी प्रेम का वृक्ष नहीं लगता।

जिन मनुष्यों के जीवन में संतोषवृत्ति तथा परोपकार की भावना नहीं होती, उनके जीवन में ईष्या का आगमन प्रारंभ हो जाता है। ईर्ष्या की अग्नि में वह मनुष्य जलता ही रहता है और कभी-कभी हिंसक भावना की प्रवृत्ति भी मन में बनना प्रारंभ हो जाती हे। मनुष्यों में अभिमान और महिलाओं में ईर्ष्या बहुलता में होती है। ईर्ष्यालु व्यक्ति कभी भी दूसरों को सम्मान पाते नहीं देख पाता। भले ही ईर्ष्या करनेवाला सम्मान के योग्य न हो, किन्तु दूसरों को सम्मानित होते हुये देखकर उसे प्रसन्नता नहीं होती।

अज्ञानी जीवों में ईर्ष्या का होना उतना आश्चर्य पैदा नहीं करता, जितना ज्ञानी जीवों को ईर्ष्या करते देखकर होता है। आज परमात्मा के मार्ग पर चलने वाले साधु महात्मा भी जब एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या आदि दुर्गुणों से भरे मिलते हैं, तो जरूर आश्चर्य होता है। जिनके जीवन में सच्चा धर्म और धर्म के प्रति समर्पण का भाव आ जाता है उनके जीवन में सरलता आ जाती है। सरल चित्त में ईर्ष्या का प्रवेश नहीं होता। सत्य की प्यास चित्त को सरल बनाती है। ईष्या का होना इस बात का प्रमाण है कि चित्त में सरलता नहीं अपितु दुरूहता है।

ईर्ष्या भाव का होना अपने वर्तमान सुख को खोना है। इस धरती पर जन्म लेनेवाला हर जीवात्मा अपने साथ सुख-दुःख का सामान भी लाता है। अब यह उसी व्यक्ति पर निर्भर है कि वह सुख या दुःख में किसे चुनता है। यदि सुख का चुनाव किया है तो फिर ईर्ष्या को छोड़ा होगा, और यदि ईर्ष्या का चुनाव किया तो

दुःख भी स्वयं में प्रगट होगा। ईर्ष्या से बुद्धि विकृत हो जाती है। ईर्ष्यालु की इन्द्रियाँ शीघ्र शिथिल होती हैं। ईर्ष्या यौवन में भी बुढ़ापा ले आती है।

प्रशंसा की शराब पीने की अपेक्षा निंदा का जहर पीना श्रेष्ठ है

प्रशंसा के शब्द नशीले होते हैं। जो नशा तम्बाकू में नहीं होता। जो नशा शराब में नहीं होता। जो नशा स्मैक में नहीं होता। वो नशा प्रशंसा में होता है। प्रशंसा का नशा बड़ा खतरनाक है। गांजा, भांग, तम्बाकू, शराब का नशा तो कुछ समय बाद उतर जाता है, किन्तु प्रशंसा के शब्द इतने नशीले होते हैं, कि उसका नशा मनुष्य के जीवन में सिर चढ़ के बोलता है। प्रशंसा मनुष्य के मन को मदहोश बनाती है।

यदि घर में, परिवार में, समाज में कोई व्यक्ति श्रेष्ठ कार्य करता है, तो उसकी प्रशंसा करने की बजाय हमें उसको प्रोत्साहित करना चाहिये। प्रशंसा मनुष्य की श्रेष्ठता को निगल जाती है। प्रोत्साहन मनुष्य को नवीन ताजगी देता है साथ ही कुछ और भी श्रेष्ठ कार्य करने की ओर प्रेरित करता है। प्रोत्साहन से हमारी आन्तरिक शक्तियाँ मजबूत होती है। जीवन उत्साह और उमंग से भर जाता है। प्रशंसा के शब्द मीठे जरूर लगते हैं, किन्तु उत्साह वृत्ति को कम करते हैं। प्रशंसा से मनुष्य अतिआत्मविश्वासी हो जाता है, जिससे वह कुछ श्रेष्ठ करने का अभ्यास खो बैठता है। जबकि प्रोत्साहन हमें सदैव कड़ा अभ्यास करते रहने की शिक्षा देता है। अभ्यास करनेवाला कभी असफल नहीं होता। यदि अभ्यास करने वाला कभी दुर्भाग्य से असफल हो भी जाये, तो अभ्यासहीन की अपेक्षा वह सफल ही कहलाता है। क्योंकि अभ्यास करनेवाला व्यक्ति पुनः अभ्यास से सफलता अर्जित कर लेता है। जबकि अभ्यासहीन की सफलता संदेहास्पद है।

प्रशंसा की शराब पीने की अपेक्षा निंदा का जहर पीना श्रेष्ठ है। प्रशंसा सुलाती है। निंदा जगाती है। यदि अपनी प्रशंसा सुनने की चाहत है, तो हम अपने ही दुश्मन हैं। यदि निंदा सुनकर संतुष्टि है साम्य है, तो हम अपने ही मित्रा हैं। हमें कभी अपनी

प्रशंसा और दूसरों की निंदा नहीं करनी चाहिये। अपनी बुराईयों की निंदा करो अपने गुणों की प्रशंसा मत करो। अपने जीवन विकास के लिये, दूसरों के गुणों की प्रशंसा और अपने अवगुणों की निंदा करो।

ॐ

जीवन बोध के लिये आवश्यक है, आत्मशोध

जीने की जिजीविषा हर प्राणी में है। मृत्यु को कोई भी स्वीकार नहीं करना चाहता। जीने की जिजीविषा का होना बुरा नहीं किन्तु मृत्यु को स्वीकार न करना बुरा है। जो मृत्यु को स्वीकारना शुरू कर देते हैं, उन्हें मृत्यु नहीं स्वीकारती। जिनका जिंदगी जीने का गणित ठीक होता है, मृत्यु उन्हें अमरता की ओर ले जाती है।

हमने अपना जीवन कैसा जिया है, इस बात का प्रमाण मौत आने पर मिलता है। अगर मृत्यु के समय परमात्मा का स्मरण बना रहे। तो परमात्मा का द्वार स्वागत के लिये तैयार रहता है। यदि मरण के समय परमात्मा के नाम का स्मरण नहीं रहता तो नरक-निगोद का द्वार खुलता है। समाधि के समय शरीर अति कमजोर हो जाता है। यदि कषायें भी कमजोर पड़ जायें, तो सम्यक् समाधि कहलाती है। मनुष्य को मिथ्यात्व का वमन कर सम्यक्त्व आराधना के चमन का आनन्द लेना चाहिये।

जीवन बोध के लिये आत्मशोध आवश्यक है। आत्मशोध का अर्थ है--झूठी जिंदगी का विरोध। स्वयं की स्वयं के लिये स्वयं पर खोज करना ही आत्मशोध है। आत्मशोध हमें मृत्यु बोध कराता है। परमानंद का अनुभव कराता है। काँटों की जिंदगी में भी फूल खिलाता है। आत्मशोध ही आत्मा से परमात्मा बनाता है। मरण के भेदों को अच्छी तरह जानकर हमें बाल-बालरमण रूप परिणामों को छोड़ देना चाहिये तथा निजात्मशरण, पंचपरमेष्ठी की शरण में मरण करना चाहिये।

ॐ

विश्वास की डोर रिश्तों में मधुरता लाती है

विश्वास सुखद जीवन का मंगलाचरण है। विश्वास ऐसा आइना है जिसमें अपना चित्त और चरित्रा दिखाई देता है। विश्वास जीवन में नया प्रकाश लाता है। विश्वास से सम्बन्ध मधुर होते हैं। जब तक विश्वास का जन्म नहीं होता, तक तक जीवन की शुरूआत नहीं होती। विश्वास से मनुष्य का आत्मबल प्रकट होता है। विश्वास कल पर नहीं कदम पर चलता है। जिसके मन में कुछ करने की जिज्ञासा है, उसे सर्वप्रथम विश्वास को पैदा करना होता है। विश्वास से ही दुनियाँ चलती है। पति-पत्नी में विश्वास ही खुशियाँ लाता है। पिता-पुत्रा में विश्वास के कारण आदर सम्मान का रिश्ता चलता है। विश्वास की डोर रिश्तों में मधुरता लाती है।

मोक्ष को पाना है, तो परमात्मा की भक्ति आराधना करना पड़ेगी। भक्ति आराधना करना है तो मन्दिर जाना पड़ेगा। मन्दिर जाने के पूर्व मन को मन्दिर बनाना चाहिये। जब आप मन्दिर की ओर एक-एक कदम बढ़ाते हैं। उस समय मन में परमात्मा के प्रति श्रद्धा भी उसी क्रम से बढ़ाना चाहिये। कदम बढ़ाने से मन्दिर तो पहुँचा जा सकता है, किन्तु परमात्मा तक नहीं पहुँचा जा सकता। श्रद्धा बढ़ाने से मन्दिर और परमात्मा दोनों का दर्शन होता है। श्रद्धा परमात्मा की भक्ति से मन को सराबोर कर देती है। मनुष्य बड़ा बेईमान है सदियों से परमात्मा के मंदिर तो जा रहा है किन्तु एक बार भी सच्ची श्रद्धा से अपने मन के अन्दर परमात्मा का दर्शन नहीं कर पाता। जीवन की सुरक्षा परमात्मा की शरण में ही संभव है।

श्वांस की तरह विश्वास का आना और उच्छ्वास की तरह अविश्वास का जाना बना रहना चाहिये। इससे तन और चेतन दोनों स्वस्थ्य रहते हैं। परिवार में विश्वास होगा, तो परिवार सुखी

होगा। परमात्मा में विश्वास होगा, तो हमारा आत्मा सुखी होगा। कहते हैं कबीर ने किसी महिला को हाथ चक्की चलाते देखा, तो अचानक उनकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। लोगों ने जब इसका कारण जानना चाहा, तो कबीर बोले यह जीवात्मा अन्न के दाने की तरह जन्म-मरण के दो पाटों के मध्य निरन्तर पिस रहा है। ऐसा सुंदर आध्यात्मिक चिन्तन सुनकर सभी लोग कबीर को प्रणाम करने लगे। आपने सचमुच इस चिन्तन के द्वारा हम सभी को नश्वर जीवन का बोध कराया। तभी कबीर का पुत्रा कमाल ठहाका मार हँसने लगा। कमाल को इस तरह हँसता देख लोग बड़े आश्चर्य चकित हुये। लोगों ने इस तरह हँसने का कारण पूछा तो कमाल ने कहा चलती चक्की में भी जो जीवात्मा अन्न के दाने की तरह कील के सहारे लग जाता है। वह पाटों के बीच नहीं पिसता। अगर हम परमात्मा रूपी कील के सहारे हैं, तो निश्चित ही जन्म-मरण की परम्परा से बच सकते हैं।

ॐ

सुसंस्कार या कुसंस्कार !

संस्कार से जीवन समृद्ध होता है। संस्कार ही मनुष्य को श्रेष्ठता प्रदान करते हैं। संस्कारों से ही आत्मीय गुणों का विकास होता है। संस्कार नये जीवन के जन्मदाता हैं। संस्कार मनुष्य को भी परमात्मा का रूप प्रदान करते हैं। संस्कारों का हमारी चेतना पर प्रभाव पड़ता है और जिस संस्कार को हमने स्वीकार किया है हम उसी रूप होना पसन्द करते हैं। अगर हमारे मन-मस्तिष्क को निरन्तर अच्छे संस्कार दिये जायें, तो हमारे जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन हो जाता है। संस्कारों से पशु भी सभ्यता को सीख लेते हैं। हम तो मनुष्य हैं मानवीयता की उपलब्धि अच्छे संस्कारों से हमें प्राप्त हो सकती है। संस्कार किसे कहते हैं ? जो अच्छाई या बुराई हमारे जीवन में निरन्तरता को प्राप्त हो जाये, वह संस्कार नाम को प्राप्त करती है। सद्गुणों का हमारे जीवन में निरन्तरता को प्राप्त कर लेना ही सद् संस्कार है, तथा अवगुणों का जीवन में निरन्तरता को प्राप्त हो जाना कुसंस्कार है। सत्संस्कार हमारे विकास के लिये आवश्यक होते हैं, तथा कुसंस्कार हमारे विकास में बाधक होते हैं। सुसंस्कार विश्वास और आत्मविश्वास को गति देते हैं। कुसंस्कार अविश्वास को तथा दौर्वल्यता को बढ़ाते हैं। अच्छे संस्कार के लिये हमें चाहिये कि हम सत समागम करें।

महापुरुष जो अच्छे और श्रेष्ठ कार्यों के कारण इस धरती पर आदरणीय हैं, उनके जीवन चरित्रा तथा पद चिन्हों का अनुकरण करें। हम नये होने की चाहत न करें। तुम कुछ भी नया नहीं कर सकते। जो कुछ भी होगा पुराने का फोटोकॉपी ही होगा। महापुरुषों का जीवन हमारे लिये प्रेरणा बने तो समझना हम संस्कारवान हैं। दुष्ट पुरुषों की जीवन हमारे लिये प्रेरणा बने, तो समझना हम कुसंस्कारवान हैं। किसी के जीवन से कुछ भी प्रेरणा न मिले तो समझना हम आलसी, प्रमादी, अज्ञानी और बुद्धू हैं।

सफलता की ओर ले जाने वाली ठोकर ही परमात्मा है।

ठोकर सफलता भी है, असफलता भी है। ठोकर खाने के उपरान्त यदि उसको गुरु मान लिया जाय, शिक्षा मान ली जाये, तो जीवन में सफलताओं का सिलसिला शुरु हो जाता है। ठोकर जब अनुभव बन जाती है तो पुनः ठोकर नहीं लगती। इसी का नाम सफलता है, किन्तु ठोकर का अनुभव न बनना। गुरु न बनना। शिक्षा न बनना, और पुनः-पुनः ठोकर खाते रहना जीवन की असफलता है। असफल जीवन जीना मनुष्य के लिये कलंक जैसा है। सफल जीवन जीना मनुष्य के मानवीय कद के अनुरूप है।

मनुष्य योनि ठोकर खाने के लिये नहीं खोटे कर्मों को ठोकर लगाने के लिये मिली है। जीवन में ठोकर तो खानी पड़ेगी किन्तु ठोकर खाने में आनंद मान लेना निरी मूर्खता है। ठोकर लगने पर उसे जीवनबोध बना लेना विवेक है। अनंतानंत भवों से हम सभी ठोकर खा दुखी हो रहे हैं, किन्तु कर्म ठोकर खाने के ही करते हैं। हमें छोटे बच्चों से शिक्षा लेनी चाहिये जो अग्नि पकड़ने के लिये नन्हें हाथों को जला लेते हैं। माँ के बार-बार मना करने पर भी बच्चे नहीं मानते, किन्तु जब हाथ जल जाता है, तो चीखते हैं चिल्लाते हैं, रोते हैं। जब बच्चे को डराने के लिये माँ वही अग्नि सामने लाती है, और कहती है, कि लो पकड़ो अग्नि, तो वही बच्चा उसे पकड़ने से इंकार कर देता है। माँ पुनः सामने अग्नि लाती है और बालक हाथ खींच लेता है। क्योंकि उसकी ठोकर उसका अनुभव बन गई है। जो दुःख अनुभव बन जाता है, उसका त्याग स्वतः हो जाता है, किन्तु जो दुःख कभी अनुभव नहीं बनता, किन्तु सुख का लोभ दिखाता है, वह दुःख कभी त्याग की ओर कदम नहीं बढ़ाता। हमारे जीवन में ऐसे बहुत से क्षण होते हैं, जो हमारी चेतना को सँवारने के लिये उपस्थित होते हैं। हमें ठोकरों का भी आदर करना चाहिये, जो हमारी चेतना को सँवारने

में कारण बनी हो। सफलता की ओर ले जाने वाली ठोकर ही परमात्मा है। असफलता की ओर ले जाने वाला गुरु भी पापात्मा है। शिक्षा भी अविद्या है।

काम भोग मुक्ति में बाधक

जिसकी रुचि जिस विषय में होती है, वह उसी विषय को अपने निकट चाहता है। उसी को सुनना और चुनना चाहता है। यदि आपकी रुचि क्रिकेट में है, तो आप क्रिकेट कॉमैंट्री सुनना चाहेंगे, उसके परिणाम को आप देखना चाहेंगे। फिर क्रिकेट के अलावा बैंडमिंटन, शतरंज, टेनिस आदि में आपका कोई रुझान नहीं होगा, क्योंकि आपकी रुचि मात्रा क्रिकेट में है। जिसकी रुचि बैडमिंटन में है, उसके लिये क्रिकेट व्यर्थ है। उससे कोई प्रयोजन नहीं। उसी प्रकार जिसकी रुचि तत्व में है, वह तत्व की बात ही सुनना चाहेगा, उसके लिये तत्व के अलावा सब बातें अर्थहीन प्रतीत होंगी। इसलिये तत्व की बात यदि आप पाना चाहते हैं, तत्व की बात यदि सुनना चाहते हैं, तो सबसे पहले आवश्यक है कि तत्वरुचि जगा लें। हमारे जीवन में पदार्थ का महत्व नहीं होता, यदि महत्व होता है, तो रुचि का, और रुचि भौतिक पदार्थों के प्रति भी हो सकती है, तथा आध्यात्मिक भी हो सकती है। जब रुचि बाह्य पदार्थों से जुड़ती है, तो संसार निर्मित होता है, और जब वही रुचि आध्यात्म से जुड़ती है, तो संसार टूटता है संसार बिखरता है, और मोक्ष निर्मित होता है। मुक्ति फलित होती है। अब यह आपके ऊपर निर्भर हैं कि आप संसार के दुःख चाहते हैं या संसार के दुःखों से मुक्ति चाहते हैं पर इतना सुनिश्चित है कि यदि आप संसार के दुःखों से मुक्त होना चाहते हैं तो आपको तत्व रुचि आध्यात्म के प्रति रुचि पैदा करनी होगी। इसके अलावा दुःख मुक्ति का कोई दूसरा उपाय नहीं है।

तत्व को सुनने के लिये कोई विरला ही जीव तैयार हो सकता है। क्योंकि तत्व को पाने के लिये भीतर के काम विकार विसर्जित करना पड़ते हैं। इसीलिये कार्तिकेय स्वामी कहते हैं। "विरला णिसुणदि तच्चं" अर्थात् तत्व की बात बिरले ही जीव सुन सकते हैं। आज तक यह संसारी प्राणी एकमात्रा काम, भोग और बंध की

कथायें ही सुनता आया है, उन्हीं का परिचय कहता है और वही काम भोग बंध की कथाएंअनुभूत की हैं। जब तक इन काम, भोग, बंध की कथाओं से मन जुड़ा रहेगा तब तक तत्व की बात इसके पल्ले नहीं पड़ सकती। यदि आप चाहें कि हम विषयभोग भी भोग लें, और आत्म कल्याण भी कर लें, तो यह दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकती। किसी ने कहा भी है--

दोउ काम नहिं होंय सयाने, विषय भोग अरु मोक्ष पयाने।

लेकिन आप लोग इतने सयाने हैं, कि विषयभोग भी चाहते हैं और मोक्ष प्राप्त भी करना चाहते हैं, जो तीन काल में असंभव है।

यदि आप अपने कल्याण के लिये तत्व की बात सुनना चाहते हैं, तो काम भोग बंध की कथाओं को सुनना बंद कर दें, और यदि इतना भी नहीं कर सकते, तो कम से कम इतना तो सच्चे हृदय से स्वीकार कर लें, कि काम, भोग की कथायें हमारे सुखमय जीवन में बाधक हैं और इन्हें हमें जड़ मूल से उखाड़ना है।

ॐ

प्राणि से जुड़ने पर संसार, प्राणिमात्रा के योग्य होने पर मोक्ष

संसार में हर आत्मा एक यात्राी की तरह है। यात्राा करना यात्राी का कर्तव्य है कार्य है। पर जो यात्राा करता हुआ भी अपने गंतव्य स्थान को प्राप्त न करे, तो उस यात्राा का जीवन में कोई मूल्य नहीं। इसलिये इस बात का सदैव ख्याल रखो, कि यात्राा का मूल्य जीवन में तब है, जबकि आप अपने गंतव्य स्थान को प्राप्त कर सकें, हासिल कर सकें। अपने उद्देश्य की पूर्णता ही यात्राा को महत्वशाली होने का प्रमाण देती है। बहिरात्मा और अन्तरात्मा में बस सबसे बड़ा यही फर्क है कि बहिरात्मा यात्राा तो करता है, निरंतर, अविराम चलता है लेकिन पहुँचता नहीं है, और अगर पहुँचता भी है, तो वृत की उस परिधि पर जहाँ से यात्राा प्रारंभ की थी। क्योंकि वृत्तीय यात्राा अंत में अपने प्रारंभिक बिन्दु पर समाप्त होती है इसलिये बहिरात्म दशा में मुक्त होने के लिये हमें अपनी वृत्तीय यात्राा पर मुख्यता से नजर रखना होगी।

बहिरात्मा जीव की अवस्था तो उस खलिहान में काम करनेवाले बैल की तरह होती है जो चलता तो रात दिन पर पहुँचता कहीं नहीं। अर्थात् उसी स्थान पर घूमता रहता है जिससे वह गंतव्य को प्राप्त नहीं कर पाता। बहिरात्मा की यात्राा एक मात्रा देह के इर्द गिर्द ही हुआ करती है। जो देह से प्रारंभ होकर देह पर ही समाप्त हो जाती है, और वह बहिरात्मा अपने को श्रेष्ठ समझने के कारण दूसरे के द्वारा समझाये जाने पर भी समझता नहीं है। एक वकील खलिहान में पहुँचा और उस बैल को देखकर उसके मालिक से पूछने लगा, बताओ अगर बैल रुक गया तो ? मालिक ने कहा हमने इसकी व्यवस्था कर रखी है, बैल के गले में घंटी बँधी है, जो उसके चलने की सूचना देती रहती है। तब वकील ने कहा, बैल तुम्हारा अनाज चरता क्यों नहीं ? तब उसने कहा उसके मुँह पर मुसीका बंधा है और आँखों पर पट्टी बंधी

है। तब वकील ने कहा अगर घंटी छूट गई और पट्टी खुल गई तो फिर तुम्हें कैसे पता चलेगा ? तब किसान ने कहा-- श्रीमान जी आप रास्ता नापो। कहीं बैल ने सुन लिया, तो कल से ही सारा मामला गड़बड़ हो जायेगा। बस इसी प्रकार हर इंसान ने हर मनुष्य ने अपने बेटों के साथ अपने मन के साथ व्यवहार कर रखा है। कभी घंटी छूटने और पट्टी खालेने की बात सुनने का अवसर ही नहीं दिया। नहीं तो बेटा बैरागी हो जायेगा। ऐसे माता-पिता बहिरात्मा है।

बहिरात्मा का चिंतन उसकी सोच संकुचित होती है। सोच संकुचित होने के कारण ही वह चारगति, चौरासी लाख योनियों में वृत्तीय यात्राा कर रहा है। भगवान महावीर स्वामी कहते हैं जो प्राणि दो प्राणि के योग्य होता है वह संसार निर्मित करता है। जो प्राणिमात्रा के योग्य होता है, वह निर्वाण पद प्राप्त करता है। इसलिये हमें प्राणि से जोड़ने वाली सोच को विदाकर प्राणिमात्रा के योग्य होने वाली समीचीन विचार धारा को जीवन में अपनाने की आवश्यकता है। जिससे संसार के बंधन खुलें और आत्मा अपने गंतव्य स्थान की यात्राा पर निकलकर मोक्ष, निर्वाण को प्राप्त कर सके।

ॐ

सुरक्षा को लाने का नहीं, असुरक्षा को मिटाने का उपाय करो

जगत में जितनी भी वस्तुयें हैं, जितने भी पदार्थ हैं, जितना जो कुछ भी दिखाई दे रहा है। उस सबका अपने-अपने में बड़ा महत्व है। हर वस्तु अपने आप में मूल्यवान है, और मजे की बात तो ये है, कि दुनियाँ में मनुष्य ने हर वस्तु का मूल्यांकन किया है, हर वस्तु की कीमत पहचानी है, हर वस्तु को अपने निजी जीवन में जिया है, और वस्तु की अमूल्यता को समष्टि तक पहुँचाने का भी प्रयास किया है, किन्तु हर वस्तु का मूल्यांकन करने वाला मानव इस छोटे से जीवन में कभी अपने आपका मूल्यांकन नहीं कर सका। हर वस्तु को अपने निजी जीवन में जीने वाले मनुष्य ने कभी अपने शाश्वत जीवन को जीने की ओर कदम नहीं उठाया। हर वस्तु की कीमत अदा करनेवाला इंसान कभी अपनी अमूल्य संपदा का अस्तित्व नहीं पहचान पाया। हम अपने जीवन में चाहे दुनियाँ की कितनी भी मूल्यवान वस्तु के मालिक बन जायें, किन्तु जब तक अपनी निजी संपदा के मालिक नहीं होगे, तक तक हमारा सम्पूर्ण जीवन असुरक्षित है।

जीवन में सुरक्षा के लिये उपाय तो होना चाहिये, किन्तु इसके साथ-साथ असुरक्षा से मुक्ति के भी उपाय होना चाहिये। आज मनुष्य निरन्तर सुरक्षा के उपाय तो खोज रहा है, किन्तु असुरक्षा के साधनों को मिटाने का कोई उपाय नहीं खोज रहा। जब तक असुरक्षा को मिटाने की दिशा में खोज या पुरुषार्थ नहीं होगा, तब तक सुरक्षा भी तुम्हारे लिये असुरक्षा बन जायेगी। जीवन में मात्रा सुरक्षा के उपाय खोजते रहने का नाम संसार है, किन्तु सुरक्षा के साथ असुरक्षा को मिटाने की दिशा में उठ खड़े होने का नाम ही संसार मुक्ति है। अगर तुम संसार से मुक्त होने की इच्छा रखते हो, तो असुरक्षा को मिटाने की दिशा में आगे बढ़ना होगा। सांसारिक साधनों की सुरक्षा में अपने को सुरक्षित महसूस करना,

अपने जीवन से खिलवाड़ करना है। क्योंकि जब मृत्यु का आगमन होता है, तो सारी सुरक्षा धरी की धरी रह जाती है, और तो और मृत्यु के आगमन पर सुरक्षा के साधन भी उस मृत्यु के ही सहयोगी हो जाते हैं। इसलिये सच्ची सुरक्षा के लिये असुरक्षा को मिटाने का संकल्प करना होगा।

असुरक्षा को मिटाने का मात्रा एक ही उपाय है कि सच्चे प्रभु के चरणों में समर्पित होकर भक्ति का अवतरण किया जाय। जिसके भी जीवन में जिनेन्द्र प्रभु की सच्ची श्रद्धा भक्ति प्रगटी है, उसने असुरक्षा का अंत कर दिया। सीता, रावण के अधिकार में होने के बावजूद भी सुरक्षित थी, क्योंकि प्रभु राम में श्रद्धा भक्ति थी। यदि प्रभु के प्रति समर्पित न होती, तो रावण का दासत्व स्वीकार करना पड़ता, और यदि हमने परमात्म भक्ति से अपना जीवन नहीं संजोया, तो पापात्मा का दासत्व स्वीकार करना पड़ेगा।

ॐ

लज्जा पैरों की जूती नहीं अपितु सिर की टोपी है

लज्जा मानव जीवन में एक महत्वपूर्ण गुण है। जहाँ लज्जा है वहाँ समस्त गुण महिमा मंडित होते हैं। लज्जा के साथ ही गुणों का सम्यक् तालमेल होता है। यदि मनुष्य के जीवन से लज्जा चली जाये तो जीवन की सम्पूर्ण समृद्धि क्षण भर में खाक हो जायेगी। लज्जा के बिना गुणों की कोई कीमत नहीं करता। लज्जा के होने पर ही गुणों का सौंदर्य बिखरता है। लज्जा का अर्थ है, सम्मान की सुरक्षा। लज्जा का अर्थ है प्रतिष्ठा की प्रतिष्ठा। लज्जा का अर्थ है इज्जत से जीना। लज्जा का अर्थ है स्वच्छ जीवन शैली। लज्जा का अर्थ है मान मर्यादा का जीवन। लज्जा का अर्थ है अपने गौरव को कायम रखना। लज्जा का अर्थ है स्वाभिमान का स्वागत। लज्जा का अर्थ है अपने से बड़ों का आदर। लज्जा का अर्थ है सत्य की पुकार। लज्जा का अर्थ है मन की निर्मलता। लज्जा का अर्थ है संतोषका अमृतपान। लज्जा का अर्थ है सात्विक गुणों से प्रेम। लज्जा का अर्थ है वाणी में मिठास। लज्जा का अर्थ है त्याग का जीवन। लज्जा का अर्थ है आत्मावलोकन में प्रसन्नता। अगर लज्जा जीवन में है तो सम्पूर्ण खुशियाँ तुम्हारे कदमों में होंगी, और यदि लज्जा जीवन में नहीं है, तो जिंदगी बोझिल हो जायेगी। गमों की बारात बनकर रह जायेगी। इसलिये सुखी जीवन का सुन्दर उपाय है कि लज्जावन्त होकर जियें।

लज्जा पैरों की जूती नहीं अपितु लज्जा तो सिर की टोपी है। लज्जा हाथों के दस्ताने नहीं अपितु दान में लगे हाथों की दास्तान है। लज्जा आँखों का चश्मा नहीं अपितु स्वच्छ दृष्टि का करिश्मा है। लज्जा होंठो की लिपस्टिक नहीं अपितु माधुर्यभरी मुस्कान है। लज्जा आत्मिक प्रेम का सशक्त अभिव्यक्तिकरण है। लज्जा श्रेष्ठ जीवन की अनुभूतियों का खजाना है। लज्जा सदाचार की प्रथम सीढ़ी है। लज्जा आनन्दमय जीवन का मंगलाचरण है। लज्जा

समस्त आभूषणों का भी आभूषण है। जिसके जीवन में लज्जा की दीप्ति है उसकी शोभा तीनों लोकों में होती है।

लज्जा के होने पर मनुष्य का जीवन बुराईयों से बचा रहता है। दुराचार अपने पंख नहीं फैला पाते। लज्जा मनुष्य को कदम-कदम पर सचेत करती है। लज्जावान मनुष्य अपने जीवन में कभी कोई ऐसा कार्य नहीं करता, जिससे कि समाज में साख गिरे। प्रतिष्ठा धूमिल हो जाये। इज्जत मिट्टी में मिल जाये। लज्जावान मानव सदैव अच्छे कार्यों में अपना उत्साह रखता है। लज्जाशील व्यक्ति कभी भी दूसरों का अनादर नहीं करता अपितु आदर्श जीवन की मंगल कामना करता है। लज्जाशील मनुष्य कभी भी अपने कर्तव्यों से परांगमुख नहीं होता।

यह सच है कि सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन की आधारशिला लज्जा है, किन्तु हमें इस बात का सदैव गौरव रहे कि परमात्म प्रेम में डूबने के लिये लज्जा को भी तिलांजलि देनी होगी। परमात्मा की भक्ति में लज्जा भी एक बाधक तत्व है। क्योंकि परमात्मा की भक्ति, उपासना, आराधना का आधार श्रद्धा के साथ किया गया समर्पण भाव है। हमें मीरा की तरह परमात्म प्रेम में डूबने के लिये लोकलाज को भी छोड़ना पड़ेगा। परमात्म प्रेम की गहन अनुभूति तिनके की तरह समर्पण करने से ही हो सकती है। अतः लज्जा को छोड़कर परमात्मा की स्तुति आराधना में डूबने का संकल्प ग्रहण करना चाहिये।

ॐ

स्तुति-निंदा में समभाव का होना साधना है

संत जीवन में साधना को अपना प्रथम कर्तव्य मानते हैं। साधना का अर्थ मात्रा उपवास करना नहीं है। साधना का अर्थ विभिन्न आसनों का आयोजन नहीं है। साधना का अर्थ कोरे तप-त्याग में संलग्न रहना नहीं है अपितु साधना का अर्थ है स्तुति या निंदा में समभाव का होना।

परमात्म भक्ति से जीवन में परमात्म सत्ता का अनुभव होता है। भक्त के लिये भक्ति से बड़ी कोई उपलब्धि नहीं है भक्ति से ही भगवत्ता का मिलन होता है। प्रत्येक आत्मा में भगवान बनने की सामर्थ्य छिपी है। भक्ति में परमात्मा का जो गुणगान किया जाता है वह आत्मा में प्रकट होने लगता है। भक्ति से आत्मा शुद्ध होता है और एक क्षण वह आता है जब अशुद्ध आत्मा ही शुद्ध स्वभावरूप परमात्मा को उपलब्ध हो जाता है।

भक्त दो प्रकार के होते हैं। अच्छे भक्त और सच्चे भक्त। जो अच्छे भक्त होते हैं, वे दुनियाँ की निगाह में अच्छे बने रहना चाहते हैं उनके अन्दर परमात्म भक्ति का इतना ही उद्देश्य रहता है। कामना वासना से रहित जो परमात्मा की भक्ति है वह सच्ची भक्ति है। ऐसी भक्ति को उपलब्ध श्रावक, सच्चा भक्त कहलाता है।

आचार्य मानतुंग स्वामी सच्चे सन्त और भक्त थे। यही कारण है कि उनकी भक्ति चमत्कार को प्राप्त हुई। हमें भक्त बनकर ही आत्मगुणों की प्राप्ति हो सकती है। जिनके जीवन में परमात्म भक्ति नहीं है उनका जीवन काँटों की दास्तान है। सच्ची श्रद्धा ही भक्ति को श्रेष्ठ बनाती है।

ॐ

मैं तुम्हें परमात्म प्रेम का संगीत सिखाने आया हूँ

परमात्म प्रेम से भरा हुआ हृदय सदैव संगीत की स्वर लहरी बिखेरता है। मैं सिर्फ होठों पर गीत नहीं अपितु हृदय में संगीत का समुंदर लहराता हुआ देखना चाहता हूँ। जिस दिन हृदय में परमात्म प्रेम का असीम, विराट संगीत उभरेगा, उस दिन होठों का संगीत मौन हो जायेगा, और सम्पूर्ण चेतना झंकार की दिव्य रश्मियों से झंकृत होगी। दुनियाँ में आज तक लोगों ने होंठों के गीत और साजो-सामान के संगीत को ही पहचाना है। उसे ही अपनी जीवन की रिक्तता को खोने में महत्वपूर्ण साधन समझ रखा है, लेकिन भौतिक जीवन की पराकाष्ठा को छूने वाले इस मानव को अपने भीतर के गीत-संगीत का ख्याल नहीं है। इसी कारण बाह्य साधनों की मधुर ध्वनि को अपने जीवन का सर्वस्व आनंद मानकर अंधेरे का जीवन यापन कर रहा है। मैं तुम्हें अंधेरे जीवन में परमात्म प्रेम का प्रकाश देना चाहता हूँ, जिससे तुम स्वयं ही अपनी अलौकिक संगीत लहरी की पहचान कर सको।

यदि परमात्मा के प्रति हृदय में श्रद्धा का भाव है, तो आपके अंदर से उठनेवाला हर विचार, हर भावना किसी संगीत की मधुर ध्वनि से कम मालूम न पड़ेगी, और यदि हृदय में श्रद्धा का संचार नहीं है, तो संगीत की सुमधुर थाप में भी श्राप की पीड़ा जान पड़ेगी। श्रद्धा में अनन्त का संगीत है, श्रद्धा में अनन्त का गान है, श्रद्धा में अनन्त की यात्राा है, श्रद्धा में अनन्त का परिचय है। अतः जीवन में श्रद्धा का अवतरण होना चाहिये, जिससे अनन्त, अखण्ड अविनाशी संगीत की सत्ता का बोध हो सके। उस अविनाशी संगीत का आनन्द लिया जा सके। जीवन की हर सांस में अविनाशी का संगीत गुंजायमान हो सके।

जीवन में भक्ति नहीं अपितु भक्ति ही जीवन हो जाये, ऐसी

अनन्य श्रद्धा के साथ भक्ति का प्रादुर्भाव होना चाहिये। भक्ति के बिना जीवन अधूरा है, और श्रद्धा के बिना जीवन भी जीवन नहीं अपितु मृत्यु है। जीवन की जीवन्त कहानी श्रद्धा की निर्मल लेखनी से ही लिखी जा सकती है। श्रद्धा की लेखनी अगर गीत लिखती है, तो श्रद्धा के साथ भक्ति उस गीत का मधुर संगीत बन जाती है, और ऐसा संगीत जिसके जीवन में प्रस्फुटित हुआ है, वह भगवत्ता का मंगलाचरण करता है। हर अधम से अधम आदमी भी अपने भीतर अविनाशी संगीत का माधुर्य छुपाये हुये है। वह प्रकट हो सकता है किन्तु तभी जबकि होठों के गीत और यंत्रों के संगीत में भ्रम की यथार्थता पहचानी जा सके। सचमुच भ्रम का ज्ञान होते ही सहज नैसर्गिक संगीत तुम्हारा स्वागत करेगा।

ॐ

समीचीन भक्ति ही आनन्द की गंगोत्राी है

भक्ति का मुखर सौंदर्य समपर्ण भाव से है। भक्त अपने प्रभु, अपने परमात्मा के प्रति जितना-जितना समर्पित होता है भक्ति उतनी-उतनी ही निखरी हुई मालूम पड़ती है। भक्ति तभी अपना सही स्वरूप पा सकती है जबकि समर्पण का भाव हो। समर्पण के बिना भक्ति कोरा दिखावा है। उसमें आनन्द की कोई झलक नहीं हो सकती। समर्पण के बिना भक्ति तो खोटी संपदा है, जिसका मूल्य कुछ भी नहीं। जैसे खोटा सिक्का बाजार में नहीं चलता, उसी प्रकार खोटी भक्ति परमात्मा के द्वार पर नहीं चलती, और बड़े आश्चर्य की बात तो ये है कि आज का व्यक्ति खोटी भक्ति के द्वारा परमात्मा का साम्राज्य, परमात्मा की पुलक, परमात्मा का आशीर्वाद पाना चाहता है जो जीवन में कभी भी घटित होने वाला नहीं है। परमात्मा का प्रेम थोथी भक्ति से नहीं, अपितु सम्पूर्ण समर्पण भाव से की जानेवाली सच्ची भक्ति, आराधना से ही प्राप्त किया जा सकता है। भक्ति जब समर्पण भाव के साथ होती है, तो "सोने में सुहागा" की सूक्ति स्वयं ही चरितार्थ होती है। तब आनन्द की वर्षा के लिये मनुहार नहीं करना पड़ती, अपितु वह समीचीन भक्ति ही आनन्द की गंगोत्राी बन जाती है।

यद्यपि परमात्म भक्ति में डूबने की कोई उम्र नहीं होती अर्थात् परमात्म भक्ति उम्र की मोहताज नहीं है, किसी भी उम्र का किसी भी जाति का किसी भी स्थान का किसी भी भाषा का, किसी भी प्रान्त और देश का व्यक्ति परमात्म भक्ति का मधुर अनुभव पा सकता है, लेकिन उम्र ढले उसके पूर्व हमें अपना जीवन परमात्म भक्ति की दिशा में ढाल लेना चाहिये, जिससे उम्र का अंतिम पड़ाव परमात्म भक्ति से समृद्ध हो तथा उत्तम मरण प्राप्त हो सके। उम्र के अंतिम पड़ाव में परमात्म भजन से वंचित न होना पड़े इसके लिये हर कदम परमात्म भक्ति से भरा हुआ होना

चाहिये और जिसने उसके अंतिम पड़ाव में, विदाई की बेला में परमात्मा का मधुर नाम स्मरण किया है, वह अपनी आत्मा को परमात्मा की उपलब्धियों से भर लेगा।

हर आत्मा में परमात्मा होने की शक्ति विद्यमान है। एक क्षुद्र जीव से लेकर विराट देह को धारण करने वाले प्रत्येक जीवात्मा में परमात्मा होने की शक्ति छुपी है। भगवत्ता हम से दूर नहीं क्योंकि वह तो हमारी आत्मा के अंदर ही छुपी है। हमें आत्मा के अंदर छुपी भगवत्ता का दर्शन करना होगा, वह दृष्टि स्वयं में पैदा करना होगी, जो आत्मा में शक्ति रूप परमात्मा का दर्शन करा सके। परमात्मा को पाना दूर नहीं अपितु परमात्मा को पाने की दिशा में चलना आवश्यक है। हमें शक्ति रूप परमात्मा की व्यक्ति का पुरुषार्थ करना होगा, और वह पुरुषार्थ है परमात्म भक्ति। जिसके माध्यम से हम अपने भीतर बैठे परमात्मा का जागरण कर पायेंगे।

ॐ

अच्छे संस्कार जीवन की अमूल्य सम्पदा है

जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्व है। संस्कार पाषाण को भी परमात्मा बना देता है, पतित को भी पावन बना देता है। संस्कार सदाचरण का सखा है। संस्कार सौम्यता का स्त्रोात है। जीवन को जीवन्त बनाने में जितना महत्व सदाचरण का है, उतना ही महत्व सदाचरण की उपलब्धि में संस्कार का है, संस्कारहीन कभी सदाचरण की गंध नहीं ले सकते। संस्कारहीन कभी सम्मान की जिंदगी नहीं जी सकते। संस्कारहीन सदैव जगह-जगह निंदा के पात्रा होते हैं तिरस्कार के पात्रा होते हैं इसलिये संस्कारों को अपने जीवन निर्माण का प्रमुख घटक समझा जाना चाहिये। जो व्यक्ति अपने जीवन का सही दिशा में निर्माण करना चाहता है, उसे संस्कारों का स्वागत भी करना होगा। संस्कारों की सम्पत्ति ही जीवन में अमूल्य बहुमूल्य सम्पदा मानी जाती है। जिसके जीवन में संस्कार होते हैं वे दुनियाँ के सर्वसम्पदा से युक्त हैं किन्तु जिसके जीवन में सम्यक् संस्कार नहीं वे धनवान होते हुये भी निर्धन हैं विपन्न हैं

महापुरुषों का जीवन संस्कारों से ही महानता को प्राप्त हुआ। महापुरुषों का चरित्रा हमारे लिये प्रेरणा देता है कि हमें अपना जीवन चरित्रा किस रूप में निर्मापित करना चाहिये। अच्छे संस्कारों से जीवन फूल जैसा खिलकर लोगों को राहगीरों को आकर्षित कर लेता है। अगर आप चाहते हैं कि हमारे लिये हर आदमी का प्यार मिले। सभी लोग मुझे प्रेम करें तो आपको स्वयं अच्छे संस्कारों का आचरण करना होगा। हर माता-पिता का कर्तव्य है कि वे अपना जीवन सादगी और सरलता से व्यतीत करते हुये अपने बच्चों को भी उसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रदान करें। जब तक माता-पिता स्वयं संस्कारवान नहीं होंगे, तब तक संतान को संस्कारवान बनाने की भावना कभी पूर्ण नहीं

होगी। जो माता-पिता स्वयं संस्कारित होते हैं, उन्हें अपने बच्चों को संस्कार देने का श्रम करना नहीं पड़ता, क्योंकि माता-पिता का आचरण ही उनके लिये अनुकरणीय हो जाता है। बच्चे माता-पिता को देखकर ही उस रूप होने की चेष्टा करते हैं।

आज हर माँ चाहती है कि उसके गर्भ से संतान पैदा हो। माँ कहलाने को हर स्त्राी लालायित रहती है, किन्तु पूत को जन्म देना सरल है। सपूत को जन्म देना बहुत कठिन। पूतना को जन्म देना सरल किन्तु सीता, द्रोपदी, अंजना को जन्म देना बहुत कठिन है। इसलिये पूत और पूतना को नहीं अपितु सपूत और अंजना को जन्म देकर अपना सौभाग्य जानो। इस भूमण्डल पर सैकड़ों नारियाँ सैकड़ों पुत्राों को जन्म देती हैं, किन्तु धन्य है वह माता, जिसने तीन लोक के नाथ तीर्थंकर को अपने पवित्रा गर्भ से जन्म दिया। तीतर जैसे पुत्राों को नहीं तीर्थंकर जैसे पुत्राों को जन्म दो। नर नहीं अपितु नारायण जैसे पुत्राों को जन्म दो। कंस नहीं कृष्ण जैसे पुत्राों को जन्म दो। जिससे तुम्हारे कुल की प्रतिष्ठा तो बढ़े ही साथ में जन्म देनेवाली माँ को भी दुनियाँ प्रणाम करें। माँ का सम्मान पुत्रा के ऊपर ही निर्भर है।

धन्य है वह माता, जिसने जन्मों-जन्मों में संयम, त्याग, और चारित्रा की साधना की। जिस माँ ने ब्रह्मचर्य को अपना जीवन सर्वस्व समझा। जन्मों-जन्मों की साधना का फल है कि उस माँ के गर्भ से तीर्थंकर पुत्रा पैदा हुआ। अतः हर माता को तीर्थंकर की माँ जैसा त्याग, संयम चारित्रा का पालन करना होगा, तथा गर्भ में शिशु के आने पर टी.वी. आदि संस्कारों के घातक साधनों से बचकर महापुरुषों के चरित्रा जीवन वृत्त को पढ़ने का स्वयं ही संस्कार डालना होगा। तो आज भी इस पंचमकाल में तीर्थंकर तो नहीं किन्तु तीर्थंकर के लघुनन्दन आचार्य कुन्दकुन्द जैसे पुत्रा जन्म ले सकते हैं।

ॐ

आत्मा को गम से मुक्ति दिलाता है आगम

आगम जैनसाधु की आँख है। आगम का पालन करना श्रमण का प्रथम कर्त्तव्य है। आगम ही आत्मा को गम से मुक्ति दिलाता है आगम को श्रमण अहोभाग्य मानकर स्वीकार करते हैं। श्रमण की चर्या कठोर किन्तु दिल कोमल होता है। कठारे चर्या का पालन करना पूर्ण साधना नहीं अपितु इसके साथ दिल में कोमलता का होना ही श्रमण की पूर्ण साधना है।

अधिक शास्त्राों का अध्ययन ज्ञान नहीं है। जीवन में हित-अहित का विचार आना ही सच्चा ज्ञान है। अग्नि जलाती है, यह शास्त्राों से जान लेना, ज्ञान नहीं कहलाता है। अपितु अग्नि से स्वयं को बचाना ही ज्ञान है। तोता रटन्त विद्या विपत्ति में काम नहीं आती। व्यवहारिक जीवन से प्रकट होने वाली विद्या (ज्ञान) ही विपत्ति में काम आती है। आज पुस्तकीय अध्ययन तो बहुत है, किन्तु व्यवहार ज्ञान क्षीण होता जा रहा है। पुस्तकीय ज्ञान से जीवन का विकास नहीं होता। जीवन के सर्वांगीण विकास के लिये पुस्तकीय ज्ञान को व्यवहार में लाना होगा। व्यवहार ज्ञान हमें अनुभवों का उपहार देता है जिससे हम कभी सद्मार्ग को छोड़कर असद्मार्ग पर नहीं जा सकते।

श्रमण और श्रावक का यह कर्त्तव्य है कि वे जिनागम को अपना आदर्श बनायें। आत्मकल्याण के सच्चे सूत्रा जहाँ होते हैं, उसे ही आगम कहते हैं। भगवान जिनेन्द्रदेव की वाणी में जो धर्म का स्वरूप बताया गया, उसे अपने जीवन में चरितार्थ करना होगा। आगम जगाने का काम करता है यदि हम ही आँख न खोलें तो अपराध हमारा ही कहलायेगा।

ॐ

एकत्व भावना निष्पृहता की जननी है

एकत्व भावना आत्मविकास का आधार है। आध्यात्मिक जीवन जीने के लिये एकत्व भावना का अवलम्बन आवश्यक है। एकत्व भावना आत्मा को बलवान बनाती है अथवा यह कहें, कि एकत्व भावना से आत्मगुणों का उद्‌भावन होता है। एकत्व भावना के अभाव में समस्त भावनायें अधूरी हैं। एकमात्रा एकत्व भावना की प्राप्ति के लिये ही सम्पूर्ण भावनाओं का अवलम्बन लिया जाता है। जो साधक एकत्व भावना से रहित होकर अन्य भावनाओं का अवलम्बन लेकर संसार सागर से पार जाना चाहता है, वह वास्तव में लक्ष्य रहित होकर सागर में नौका चलाने का व्यर्थ श्रम कर रहा है। एकत्व भावना को लक्ष्य बनाकर जिसने अन्य भावनाओं की निरंतर भावना की है, वह भव्यात्मा शीघ्र ही संसार सागर से पार होकर अशरीरी सिद्ध परमात्मा के वैभव को प्राप्त करने वाला है। एकत्व भावना आत्मा में रूचि ही उत्पन्न नहीं करती अपितु आत्मतत्व से बाह्य समस्त पदार्थों में समता भाव को भी जाग्रत करती हैं।

एकत्व भावना निष्पृहता की जननी है। एकत्व भावना में निष्णात साधक समस्त पर पदार्थों तथा इनके निमित्त से उत्पन्न भावों को अपने निज स्वभाव से सर्वथा पृथक् अनुभव करता है। जब साधक का यह अनुभव घना होता जाता है, तो साधक का जीवन आत्मस्वभाव को छोड़कर समस्त निमित्तभावों को अपनी स्वतंत्राता में बाधक मानता है। इस अवस्था में साधक एकमात्रा आत्मभावों का आश्रय करके अपने निज शुद्ध स्वभाव के चिंतन में डूबा रहता है। एकत्व भावना में आत्मगुणों का चिंतन किया जाता है। यह एकत्व भावना ही साधक के जीवन में शुद्धोपयोग का आधार, साधन, निमित्त बनती है।

प्रश्न उठता है एकत्व भावना की आराधना करने वाले

आराधक के लिये निष्पृह होने के लिये क्या पुरुषार्थ करना पड़ता है ? क्या निष्पृहता सहज ही स्वभाव में प्रकट हो जाती है ? इसका उत्तर यह है कि जब साधक एकत्वभावना का आश्रय लेता है तो आत्मस्वभाव रूप भावों का ही विकल्प रह जाता है। एकत्व भावना में आत्मगुणों का बुद्धिपूर्वक चिंतन करना, भावना करना होती है। जिस क्षण आत्मा के स्वभावरूप गुणों का आश्रय करके भावना की जाती है, उस क्षण पर पदार्थों की स्पृहा सहज ही समाप्त हो जाती है। परपदार्थों की स्पृहा न होने से निष्पृहता का आगमन भी सहज ही हो जाता है। आत्मस्वभाव का आनन्द जिस आत्मा में प्रकटा है उस आत्मा को निज स्वभाव का दृढ़श्रद्धान होता है। परभावों से उसकी श्रद्धा कंपायमान नहीं होती। इस प्रकार एकत्वभावना में दृढ़ हुआ साधु का मन आत्मगुणों को छोड़कर अनात्म में पूर्ण निष्पृहता को धारण करता है।

एकत्व भावना से वासित है जिसका मन, ऐसे निष्पृह साधक को ही शुद्धोपयोग की महानिधि प्राप्त होती है। एकत्व की साधक अन्य भावनायें वैराग्य को वृद्धिंगत करती है। पूर्ण एकत्व भावना के योग्य तो तभी हुआ जा सकता है जिसने सम्पूर्ण भावनाओं की भावना की हो तथा तदनुरूप आचरण किया हो। ऐसे महाश्रमण के जीवन में ही एकत्वभावना की पूर्णता को देखा जाता है। ऐसे श्रमण ही शुद्धोपयोग के योग्य होते हैं। ये महाश्रमण एकत्व भावना के आश्रय से मैं शुद्ध हूँ, अनन्तदर्शनस्वरूप हूँ, अनन्तसुख स्वरूप हूँ, अनन्तवीर्यवान हूँ, आदि-आदि ध्यान सूत्रों का चिंतन करते हैं, तथा इन ध्यानसूत्रों का चिंतन भावना करते हुये, अशुभ भावों से पूर्ण निर्वृत होकर किसी एक ध्यान सूत्रा पर अपने को एकाग्र करते हुये उस दशा को ज्ञेय जानकार स्वयं ज्ञायक हो जाते हैं। ज्ञायक होने की यह भावना एकाग्रता को और घना करती जाती है, और अपनी एकाग्रता को भंग न करती हुई निर्विकल्पसमाधि को साध लेती है।

एकत्व भावना से ही यथार्थ आत्मशांति प्रकट होती है। एकत्व भावना से जिसका मन अच्छी तरह संस्कारित हुआ है, उस

भव्यात्मा को ही भेदज्ञान की उपलब्धि होती है। श्रमण की सम्पूर्ण साधना समाधि के लिये है। एकत्व भावना के अभाव में श्रेष्ठ समाधि की संभावना नहीं कही जा सकती। एकत्वभावना से उत्कृष्ट धर्म की प्राप्ति होती है। एकत्व भावना से उत्कृष्ट समाधि फलित होती है। एकत्व भावना से ज्ञान शीघ्र निरावृत्त होता है। एकत्वभावना से संवर निर्जरा होती है। अतः सहज निष्पृहता की जन्मदाता एकत्वभावना का आश्रय करो, जिससे शरीर, काम, भोग की पूर्ण निवृत्ति हो सके।

ॐ

आदर्श जीवन के लिये क्षमा गुण नींव की तरह

आदर्श जीवन के लिये क्षमा गुण नींव की तरह कहा गया है। जैसे नींव के अभाव में भवन का निर्माण नहीं होता, उसी प्रकार क्षमा गुण के अभाव में आदर्श जीवन का निर्माण नहीं होता। क्षमा गुण आदर्शों का आदर्श है। क्षमा गुण आत्म समृद्धि का द्योतक है। क्षमा गुण से आपसी मेल-मिलाप तो बढ़ता ही है, साथ ही कटुता भाव का अंकुरण भी नहीं होता। क्षमा गुण से जीवन महानता की ओर अग्रसर होता है। क्षमावान के समक्ष सदैव बैर को पराजित होना पड़ा है।

आज भगवान पार्श्वनाथ के लिये मोक्ष की प्राप्ति हुई। भगवान पार्श्वनाथ का सम्पूर्ण जीवनवृत्त हमें संघर्ष में भी हर्ष की प्ररेणा देता है। कमठ का बैर और पार्श्वनाथ की क्षमा दस भव तक निरंतर बनी रही। पार्श्वनाथ ने क्षमा धर्म को जीवन का आधार चुना, तो कमठ ने बैरभाव से जीवन को दुःखमय बनाया। बैरभाव से कभी दुनियाँ में न तो कोई सुखी हुआ है और न ही हो सकता है। क्षमाधर्म संकटों में भी सुख का संचार करता है। बैर भाव रखना ही मनुष्य की अज्ञानता है। बैर में समस्त गुण स्वाहा हो जाते हैं। बैरभाव रखने वाला प्राणी नरक की महावेदना पाता है।

आज का दिन पार्श्वनाथ की मात्रा पूजा का दिन ही नहीं अपतिु उनकी पूज्यता के आधार क्षमागुण को जीवन में अवतरित करने का दिन है। भगवान पार्श्वनाथ की अर्चना से लोक में धन संपत्ति प्राप्त होती है और उनके आदर्शों को जीवन में उतारने से आत्मधन संपत्ति की प्राप्ति होती है।

ॐ

रागद्वेष में नहीं अपितु समभाव में जीना सीखें

संसार का हर प्राणी दुःखी है। जीवन में दुःखों का मूल कारण जीवों की अज्ञानता है। राग-द्वेष से मंडित ज्ञान कभी भी ज्ञान नहीं हो सकता, अपितु अज्ञान की कोटि में ही आता है। जब तक जीवन में राग-द्वेष की परिणति है, तब तक अज्ञान का अंधकार फैला हुआ है, जिस क्षण राग-द्वेष जीवन से विदा होता है राग-द्वेष जीवन से मुक्त होता है, उसी समय ज्ञान का सूर्य प्रकट होना प्रारंभ हो जाता है। ज्ञान तो यद्यपि आत्मा का स्वभाव ही है, किन्तु ज्ञान जब ज्ञान रूप नहीं रहता, अर्थात् राग-द्वेष रूप रहता है, तो वह ज्ञान ही अज्ञान कहलाता है। हमें अपने जीवन को राग-द्वेष से रहित वीतरागता के मार्ग पर गतिशील करना चाहिये। जिससे अनन्त दुःखों का तिरोभाव होकर अनन्त सुखस्वरूप आत्मा में डूबा जा सके।

वीतरागता का मार्ग ही मुक्ति का मार्ग है। निर्वाण का हेतु है। जीवन मरण के महादुःखों से बचने का उत्तम उपाय है। आदमी सुख तो पाना चाहता है किन्तु सुख को पाने का समीचीन मार्ग समीचीन उपाय तथा उस रूप पुरुषार्थ नहीं करना चाहता। जब तक सुख को पाने के मार्ग का जीवन में अवतरण नहीं होगा, तब तक सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है। सुख आदमी के बिल्कुल निकट है, किन्तु बड़ी विडम्बना है, कि आदमी अपने निकट रहने वाली वस्तु को न देखकर दूरस्थ वस्तु से सुख प्राप्ति की कामना करता है। वीतरागता जीव का स्वभाव होने पर भी यह संसारी जीव उस वीतरागता को तो निहारता नहीं, किन्तु बाह्य पदार्थों में राग-द्वेष की कल्पना करता रहता है। जिस क्षण हमारी दृष्टि वीतरागता को निहारती है उसी क्षण राग-द्वेष से रहित अनन्त आनन्द अपने आत्म घट में अवतरित होने लगता है।

इस दुनियाँ में रहकर तुम राग-द्वेष भी प्राप्त कर सकते हो,

और वीतरागता भी प्राप्त कर सकते हो, किन्तु तुम्हें जो वस्तु चाहिये, उस वस्तु के मालिक को अथवा उस वस्तु के ज्ञाता को जीवन में स्वीकार करना होगा। यदि राग-द्वेष से ही अपना जीवन मंडित करना चाहते हो तो रागी-द्वेषी देवी देवताओं की उपासना करो और अनन्त दुःख स्वरूप संसार में भ्रमण करो। यदि वीतरागता को अपने जीवन में उतारना चाहते हो, तो वीतरागी परमात्मा की शरण को उपलब्ध हो जाओ। वीतरागी गुरु को अपनी जीवन की डोर सौंप दो। वीतरागी गुरु को अपने जीवन में सदैव हितकारी जानकर स्वीकार करो। वीतरागता तुम्हारे आत्म घट में अवतरित होगी। इस दुनियाँ का यह सिद्धान्त है कि जो जिसके पास होता है वह वही देता है। यदि रागी-द्वेषी आत्माओं की संगति करोगे, तो राग-द्वेष के अलावा और कुछ भी हाथ नहीं आयेगा। संसार की चक्की में पिसते रहने के अलावा और कोई भी उपलब्धि न कर सकेंगे। इसलिये वीतरागता को चुनो, वीतरागी देव को ही अपना आराध्य देव मानकर स्वीकार करो। सारी दुनियाँ सुन्दर हो जायेगी, जब तुम्हारी दृष्टि में वीतरागता उद्घाटित होगी। सारा दुःख पीड़ा, वेदना कष्ट मिट जायेगा। सुख की दिव्य अनुभूतियों से दामन भर जायेगा। अतः परमात्मा की वीतरागता आपके जीवन का श्रृंगार बने। शाश्वत सुख की बहार तुम्हें हर पल प्राप्त हो। इसके लिये आवश्यक है कि राग-द्वेष में नहीं अपितु समभाव में जीना सीखें। हृदय में उसी परमात्मा का सतत् स्मरण, ध्यान का दीप प्रज्जवलित होता रहे।

ॐ

दुःख का मूल कारण है निज ब्रह्म को न पहचानना

ब्रह्म के सौंदर्य को पहचानो, जिससे निज घट में परमब्रह्म का अवतरण हो सके। जो ब्रह्म को नहीं पहचानता। वह परमब्रह्म को कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। ब्रह्म की पहचान करने के लिये कहीं बाहर नहीं भटकना। ब्रह्म की पहचान करने के लिये कहीं देश-विदेश की यात्राा नहीं करना। ब्रह्म की पहचान करने के लिये किसी बाग-बगीचे में नहीं जाना। ब्रह्म की पहचान करने के लिये किसी वैज्ञानिक आविष्कारों का सहारा नहीं लेना। ब्रह्म की पहचान करने के लिये गली, मोहल्ला, गाँव, नगर की डगर पर नहीं चलना। ब्रह्म की पहचान करने के लिये किसी स्वजन-परिजन से नहीं पूछना। ब्रह्म से परिचय करने के लिये बाहर की सम्पूर्ण यात्राओं पर विराम लगाते हुये सिर्फ अपनी ओर लौटना है। जब सम्पूर्ण जगत से सम्बन्ध और परिचय विसर्जित हो जाते हैं, तब ब्रह्म से परिचय होना प्रारंभ होता है, और जब ब्रह्म से परिचय होता है, तो दुनियाँ की प्रत्येक वस्तु में अपनत्व का भाव विलीन हो जाता है, क्योंकि निज ब्रह्म के अलावा इस संसार में अपना कुछ भी नहीं है।

चतुर्गति रूप संसार में भटकने का मुख्य कारण निजब्रह्म से पहचान न होना ही है। आदमी इस दुनियाँ में हर वस्तु की पहचान करना चाहता है किन्तु बड़े दुःख की बात है कि मनुष्य एक निज ब्रह्म से ही पहचान करने में पिछड़ा हुआ है। मनुष्य ने इस विश्व की हर वस्तु को पहचाना है किन्तु एक निज ब्रह्म को ही नहीं पहचान पाया। सम्पूर्ण विश्व को पहचानने वाला मानव जब तक निज ब्रह्म को नहीं पहचानता, तब तक वह संसार के चतुर्गति रूप दुःखों से मुक्त नहीं हो सकता। आज डिस्कवरी चैनल पर नाना प्रकार के जन्तुओं, जानवरों, पक्षियों की खोज बताई जाती हैं, किन्तु निज ब्रह्म की खोज न करने से वह सब

ज्ञान का बुद्धि का, बरबाद करना ही है, क्योंकि जिसे निज ब्रह्म की पहचान हो जाती है, वह परम ब्रह्म को अपने में प्रकट कर लेता है, और जिस आत्मा में परमब्रह्म का जागरण हो जाता है। वह विश्व की सम्पूर्ण वस्तुओं को स्वयमेव जानने लगता है।

इस जीव की यह भूल अनादि से रही है, और इसी भूल के कारण वह निज सुख को छोड़कर पर वस्तुओं में सुख की कामना करता है। जबकि सुख पर वस्तुओ में नहीं अपितु निज ब्रह्म की पहचान करने से होता है। ब्रह्म सुख स्वरूप है, आनन्द स्वरूप है। ब्रह्म की खोज ही सुख और आनन्द की खोज है। जबकि पर वस्तुयें तो जड़ हैं और जड़ वस्तुओं में सुख और आनन्द नहीं होता है। ब्रह्म का स्वभाव तो सुख और आनन्द है। जड़ वस्तुयें सुख और आनन्द का भ्रम पैदा करती हैं। जीवन भर जड़ वस्तुओं के पीछे भागने वाला मनुष्य अंत में अनन्तसुख से वंचित रह जाता है। न तो वह इस लोक में ही सुखी रह पाता, और न ही वह परलोक में सुख को उपलब्ध हो पाता। जिसने लोक की सम्पूर्ण वस्तओं के साथ-साथ अपनी देह को भी अपना नहीं माना। वह भव्य आत्मा ही निज ब्रह्म की पहचान कर पाता है। ब्रह्म ज्ञान दर्शन स्वरूप है और देह जड़ (पुद्गल) है। अतः ज्ञान दर्शन स्वरूप निज ब्रह्म की पहचान कर परमब्रह्म को प्रकट करने का पुरुषार्थ करो जिससे चतुर्गति रूप संसार के सम्पूर्ण दुखों से मुक्ति प्राप्त हो सके।

ॐ

शक्ति और भक्ति का मिलन परमात्मा का अवतरण है

आज हर राष्ट्र अपने को शक्तिशाली बनाना चाहता है। इसके लिये अति विध्वंसक परमाणु बमों का परीक्षण आये दिन होते रहते हैं। परमाणु शक्ति सम्पन्न होने के लिये घातक शस्त्रों का निर्माण नहीं अपितु आध्यात्मिक जीवन का निर्माण करना होगा, जो वास्तविक शांति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होगा।

सृजन और विध्वंस के लिये दो बातें महत्वपूर्ण हैं, भक्ति और शक्ति। जब भक्ति से रहित शक्ति अपना अस्तित्व बनाना चाहती है, तो विनाश का युग शुरु हो जाता है। शक्ति का अकेला होना विध्वंस का कारण है। कोरी शक्ति तांडवलीला को जन्म देती है। कोरी शक्ति उपद्रव को निमंत्राण देती है। शक्ति से कभी सृजन का स्वप्न साकार नहीं हो सकता। शक्ति मनुष्य को संवेदहीन बना देती है। शक्तिशाली राष्ट्र, समाज, परिवार, मनुष्य, कमजोर और निर्बल को सताते रहते हैं। हृदय में कठोरता का संचार होने लगता है। इसलिये अकेली शक्ति सृजन की तस्वीर नहीं बनाती। यदि शक्ति, भक्ति के साथ हो, तो सृजन की सुंदर तस्वीर बनती है। शक्ति और भक्ति का मिलन परमात्मा का अवतरण है। कोरी भक्ति से भी निवार्ण घटित नहीं होता। भक्ति को शक्ति का सहारा चाहिये। शक्ति को भक्ति का विवेक चाहिये। भक्ति से आत्मा का हर प्रदेश रोमांचित हो उठे तो स्वयमेव सर्वश्रेष्ठ शक्ति वज्रवृषभ नाराच संहनन प्राप्त होता है। भक्ति का अर्थ है प्रेम, करुणा, अहिंसा, दया, प्रेम और शक्ति उन्नति का आधार हैं।

ॐ

रूप का नहीं रूह का सम्मान करना सीखो

मनुष्य सदियों से रूप का दीवाना है। देह का सौंदर्य क्षणभंगुर है और मनुष्य उस क्षणभंगुर सौंदर्य का भव-भव से सम्मान आदर करता चला आ रहा है। मनुष्य क्षणिक सुंदरता के लिये अपना जीवन दाँव पर लगा देता है। भगवान महावीर स्वामी कहते हैं--हे मानव ! तू देह के क्षणिक सौंदर्य में अपना जीवन बरबाद मत कर। यह सौंदर्य तेरी बुद्धि और विवेक को समाप्त कर देगा। रूप एक छलावा है, रूप एक दिखावा है, रूप शाश्वत नहीं अशाश्वत है। रूप मनुष्य को ठगनेवाला है। रूप अपने मायाजाल में फँसाता है, और संसार के गहन गर्त में गिराता है। रूप की दीवानगी स्वरूप के प्रति बेरुखी है। रूप ने मौन रहकर भी दुनियाँ को अपने जाल में फँसा रखा है। रूप के दीवाने वही होते हैं जो रूह के सौंदर्य को नहीं जानते। रूप हृदय में पीड़ा पहुँचाता है। रूप अन्तर में कसक पैदा करता है। रूप दिल में बिच्छू के डंक की तरह चुभ जाता है। रूप का नाग अगर मनुष्य को डंस ले, तो तड़प-तड़प कर मरना पड़ता है। रूप का बिच्छू अगर डंक मार दे तो क्षण भर भी सुकून नहीं मिलता। रूप का खटमल खुशी को छीन लेता है। रूप का मच्छर अगर काट ले, तो दिन-रात नींद नहीं आती। इसलिये रूप की दीवानगी छोड़कर रूह के प्रति प्रेम से भरें।

चर्म की आँखें रूप की प्यासी हैं। मात्रा बाह्य रूप का ही रसपान करती हैं। यदि परमात्मा के द्वार पर परमात्मा के मंदिर में पहुँचकर दृष्टि में परमात्मा का स्वरूप नहीं आता, दृष्टि में परमात्मा की वीतरागता नहीं आती, दृष्टि में परमात्मा का निर्विकार भाव नहीं झलकता, तो परमात्मा के दर्शन करने के बाद भी प्रभुदर्शन नहीं होता। जो परमात्मा के दर्शन करना चाहते हैं उन्हें चर्मचक्षु से नहीं अपितु अन्तः चक्षु खोलना होंगे। श्रद्धा की

आँख में परमात्मा का दिव्य सौन्दर्य अवतरित होता है, जबकि ध र्म की आंख परमात्मा की मूर्ति में भी पत्थर, सोना, चाँदी, पीतल आदि-आदि धातु का ही दर्शन करती है, और जिसकी आँखों में परमात्मा की मूर्ति देखने के बाद भी परमात्मा तो नहीं अपितु पत्थर दिखाई देता है, वह पत्थर की ही उपासना करनेवाला समझना चाहिये, जबकि जिस भव्य आत्मा को पत्थर की मूर्ति में भी परमात्मा का दर्शन होता है, उसे अपने अंदर बैठे परमात्मा का दर्शन लाभ भी शीघ्र होता है। उसका जीवन परमात्मा होने के मार्ग पर चलने लगता है। इसलिये परमात्मा का दर्शन चर्म की आँख से नहीं अपितु धर्म की श्रद्धा की आँख से करो।

रूप की चाहत उसी के दिल में होती है, जिसके अंदर राग-द्वेष विद्यमान होता है। राग-द्वेष की मौजूदगी ही रूप की आकांक्षा को जन्म देती है। जबकि राग-द्वेष से रहित आत्मा में वीतरागता का अमृत हिलोरें लेता है। वीतरागी, रूप की आकांक्षा से मुक्त प्रत्येक जीवात्मा में परमात्मा को स्वीकार करता है। वीतरागी को स्त्री, पुरुष, नपुंसक, बिच्छु, चींटी, केंचुआ, जल, वृक्ष सभी में आत्मा दिखाई देती है, और जो आत्मा को स्वीकार करता है, वह शक्ति रूप परमात्मा का होना भी स्वीकार करता है। रूप की प्यासी आँखें कभी भी परमात्मा की सच्ची भक्ति नहीं कर सकतीं। अर्थात् जो रूप की चाहत से भरा है जो रूप का दीदार कर अंदर-ही-अंदर प्रसन्न होता है, जो रूप का दर्शन कर हर्षित होता है। वह कभी भी स्वरूप को उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि जो रूप के रूप में दिखाई दे रहा है, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है, और जो आत्मा का स्वभाव है, वह रूपायित नहीं होता। इसलिये रूप का दर्शन परमात्मा को उपलब्ध नहीं करा सकता। अतः परमात्म तत्व की शाश्वत उपलब्धि के लिये हमें चाहिये कि हम अपने स्वरूप का दर्शन करने की दिशा में पुरुषार्थ करें। रूप का दर्शन कर आज तक हमने राग-द्वेषमय परिणति को ही संवारा है। राग-द्वेष परिणति ने हमें संसार की कारागार में

कैद कर दिया है। हम आज कैदी-सा जीवन व्यतीत करते हुये भी स्वतंत्राता की चाह से परे हैं। यह हमारा दुर्भाग्य ही है।

अगर तुम्हारे अंदर रूप की प्यास भी है, तो रूपसी नारियों का नहीं अपितु वीतरागी सच्चे देव के रूप का दर्शन करो। वीतरागी देव के रूप का दर्शन करने से राग-द्वेष रूप परिणति का विनाश होता है। राग-द्वेष मय परिणति के विनाश होने से संसार का अंत और मुक्ति का आनन्द प्राप्त होता है। बाह्य रूप के दर्शन से आत्मा कलंकति होता है। आज तक हम कलंकित जीवन जी रहे हैं। कंलकित जीवन जीना हमारे पुरुषार्थ का गलत दिशा में सक्रिय होना दर्शाता है। यदि हमारा पुरुषार्थ आत्मा की निर्मलता की दिशा में हो, तो कलंकित जीवन से भी छुटकारा मिल सकता है। यह सारा पुरुषार्थ इस मनुष्य पर्याय में ही सार्थक हो सकता है।

जब श्री राम को वनवास हो गया, और राम-लक्ष्मण, सीता वनवास में थे। तभी एक दिन सीता ने सुदंर-सा एक स्वर्णमृग देखा। सीता मृग के रूप पर आसक्त हुई, और सुरक्षित जीवन में भी संकट का पहाड़ खड़ा हो गया। एक मृग के रूप पर आसक्त होन का दुष्परिणाम यह निकला कि सीता का रावण ने अपहरण कर लिया। सीता का श्रीराम से बिछोह हो गया, और न केवल इतना ही दुःख भोगना पड़ा अपितु सीता, राम के द्वारा भी परित्यक्त किये जाने पर जंगल-जंगल भटकती रहीं और अंत में अग्नि परीक्षा जैसी कठोर परिस्थिति का सामना करना पड़ा। यदि सीता मृग के रूप पर आसक्त नहीं होती, तो रावण उसका हरण न कर पाता। रावण यदि हरण नहीं कर पाता तो सीता के विषय में धोबी अनुचित शब्द नहीं कहता। धोबी अनुचित शब्द नहीं कहता तो राम भी सीता का परित्याग नहीं करते और सीता को अग्नि परीक्षा से भी नहीं गुजरना पड़ता। अतः सीता ने एक मात्रा मृग के रूप पर आसक्त होने के कारण इस प्रकार के दुःखों को सहन किया। इसी प्रकार तीन खंड का अधिपति, महाविद्वान

रावण भी एक सीता के रूप पर आसक्त हुआ तो सम्पूर्ण जीवन कलंक के कीचड़ से सन गया। रावण को न सिर्फ पराजित होना पड़ा, अपितु नरकगति में जाकर भीषण दुःखों को भी भोगना पड़ रहा है। अतः रूप का नहीं अपितु रूह का सम्मान करना सीखो। जिससे अमरत्व घटित हो सके।

चारित्रा निर्माण के लिये धर्मगुरु ही शरण हैं

आदमी की प्यास जल से मिटती है। आत्मा की प्यास विनय से मिटती है। प्यासे आदमी को जूस नहीं दूध नहीं, जल चाहिये। प्यासी आत्मा को न पुण्य, न पुण्य का सामान अपितु विनय का रसपान चाहिये। विनय का पवित्रा जल आत्मा की केवल प्यास ही नहीं बुझाता, साथ ही कषायों का कलंक भी धोता है। विनय आत्मा की कठोरता को समाप्त करके मिट्टी सम मृदु भी बनाती है।

सम्यक्त्व आराधना को जो मनुष्य प्राप्त करता है, उसका दुःखमय संसार कुऐं के जल बराबर रहता है, तथा चारित्रा आराधना को जो भव्यजीव प्राप्त करता है, उसका दुःखमय संसार, अंजुली प्रमाण जल के बराबर होता है। सम्यक्त्व आराधना प्रथम होती है। इसके होने पर ही चारित्रा आराधना की प्राप्ति की जा सकती है। सम्यक्त्व विनय की प्राप्ति होने पर ही ज्ञान की सार्थकता है। जो सन्मार्ग में शंकादि दोषों से रहित होकर उपगूहन आदि गुणों को प्राप्त करता है, अरहंतदेव की भक्ति से प्रसन्न होता है, उस भव्य प्राणी के सम्यक्त्व विनय कही गई है। जो अहिंत देव की विनय नहीं करता, वह दीर्घ संसारी जीव है। विद्या नियम से विनय को लाती है। विनय नहीं है तो अनेक शास्त्रों को पढ़ने के उपरान्त भी ज्ञान नहीं होता। हम सम्यग्ज्ञानी हैं, विनय इसका प्रमाण बनती है। आज दुनियाँ में शिक्षा का विकास हो रहा है। विनय का □ास हो रहा है। वर्तमान की शिक्षा हमें प्रमाणपत्रा तो देती है, किन्तु चारित्रिक निर्माण नहीं देती। चारित्रिक निर्माण के लिये धर्मगुरु की शरण चाहिये।

परमात्मा के प्रति धन्यता का भाव ही भक्ति का जागरण

भक्त जब भगवान के चरणो में पूर्णतः समर्पित हो जाता है, और अपनी सम्पूर्ण कामनायें, इच्छायें, खोकर प्रभु की भक्ति में तत्पर होता है, तब जीवन में एक नई अनुभूति का सहज संचार होता है। जब तक समर्पण का भाव नहीं होगा, तब तक परमात्मा की दिव्य अनुभूतियों से साक्षात्कार नहीं हो सकता। अंतस का जागरण समर्पण के आधार पर टिका है। जब-जब भक्त अपने आपको समर्पण की अग्नि से गुजारता है, तब-तब उसकी अंतम चेतना तेजस्विता को उपलब्ध होती चली जाती है। समर्पण की अग्नि का आहवान करो, क्योंकि यह आंतरिक सुख की प्रथम अनुभूति है। जब तक समर्पण की अग्नि का संयोग नहीं होगा, तब तक अंतस्थ की परम अनुभूतियों का खजाना खोजा ही नहीं जा सकता। परमात्मा की दिव्य अनुभूतियों एवं धर्म की उपलब्धियों को पाने की आशा से अग्नि में समर्पण करने वाले ज्ञानी लोग तो इस दुनियाँ में बहुत मिल जायेंगे, किन्तु जब तक सच्चे देव, सच्चेशास्त्रा एवं सच्चे गुरु के श्री चरणों में समर्पण की तपस्या का अवतरण नहीं होगा, तब तक धर्म की उपलब्धियाँ किसी भी प्रकार से हासिल नहीं की जा सकती हैं। इसलिये अग्नि में समर्पण करने की अज्ञानता को छोड़कर सच्चे देवशास्त्रा गुरु के चरणों में समर्पण की अग्नि से गुजरते का संकल्प जगाओ, जिससे अनादि से संयोग को प्राप्त अशुद्धता जलकर खाक हो सके, और शुद्ध सोने जैसी आत्मा की प्राप्ति हो सके।

अहंकार की कार में सवार होकर भक्ति का आगाज नहीं होता। अहंकार भक्ति में बाधक होता है। अहंकार में भक्ति नहीं शक्ति का थोथा प्रदर्शन होता है। अहंकारी का जीवन अधम होता है क्योंकि अहंकार स्वार्थी जीवों का भूषण कहा गया है। स्वार्थी मनुष्य के हृदय में कभी दया, प्रेम, वात्सल्य का हार्दिक सौंदर्य

उद्घाटित नहीं होता। जहाँ दया, प्रेम, वात्सल्य नहीं है, वहाँ भक्ति का अवतरण कैसे हो सकता है ? भक्ति के लिये चाहिये असहाय दशा। यानि जब हम इस दुनियाँ की भीड़ में अपने आपको एकदम अकेला, असहाय महसूस करेंगे, तो परमात्मा ही एकमात्रा हमारे सहारे जान पड़ेंगे। तब स्वयमेव ही भक्ति का आगाज, भक्ति का शंखनाद होना प्रारंभ हो जायेगा। भक्ति तब आपको, आपकी जिंदगी को दिव्य आनंद की अनुभूतियों से प्लावित करेगी। आप स्वयं इस आश्चर्यकारी भक्ति की शक्ति को समझकर परमात्मा के प्रति धन्यता से भर जायेंगे। यदि परमात्मा के प्रति धन्यता का भाव आये, तो समझ लेना हृदय में भक्ति का जागरण हुआ है।

भक्ति हमारे अंतरंग की निर्मलता को उजागर करती है। भक्ति के माध्यम से हम अपनी कषायों को शांत कर परमात्मा के निकट पहुँच सकते हैं। जब तक कषायों का प्रशमन नहीं होगा, तब तक हमें परमात्मा की निकटता हासिल नहीं हो सकती। भक्ति ही एक ऐसा सशक्त माध्यम है, जो कषायों को शांत कर जीवन में खुशियाँ बिखेर सकती है। कषायों की उग्रता ही जीवन में दुःख कहलाती है, कषायों की मंदता सुख की ओर चलने में सहयोगी हो सकती है। कषाय से रहित जीव ही सम्यक् सुख का अनुभव कर सकते हैं। भक्ति ही स्त्रोत एक मात्रा कषायों का चक्रव्यूह तोड़ेने में हेतु है। कषाय के चक्रव्यूह के टूटते ही आनन्द की बरसात होना प्रारंभ हो जाती है।

ॐ

भगवान पार्श्वनाथ ने संघर्ष में भी हर्ष को जिया है

बैर आदमी की विकृत मानसिकता का प्रतीक है। बैर मन को कुंठित कर देता है। बैर आन्तरिक प्रसन्नता को छीन लेता है। बैर आत्मिक शक्ति का नाश करता है। बैर इच्छा शक्ति को नष्ट कर देता है। बैर आदमी को रुग्ण कर देता है। बैर अमूल्य ऊर्जा का हनन करता है। बैर जीते जी आदमी को जलाता रहता है। बैर भव-भव में हमारी आनन्द की यात्राा में बाधक बनता है। अगर आज आदमी दुःखी है तो उसका मूल कारण किसी न किसी रूप में बैर का पाया जाना ही है। बैर वह सुलगती हुई अग्नि है, जो ऊपर से तो शान्त दिखती है, किन्तु अन्दर से प्रज्वलित होती रहती है। बैर वह फोड़ा है जो ऊपर से तो ठीक दिखता है, किन्तु शरीर के अंदर ही अंदर मवाद पैदा करता है। बैर वह भूमि है जो ऊपर ऊर्वरा मालूम पड़ती है किन्तु गहराई में पत्थर का ढेर होती है। बैर जीवन की सबसे बड़ी बुराई है अतः बैर को छोड़कर समस्त प्राणी मात्रा के प्रति प्रेम का भाव जाग्रत करो, जिससे अनादि से आगत दुःखों की परम्परा को नष्ट किया जा सके।

अगर जीवन में बैर की काली घटायें घिर आयें, तो बाढ़ का नजारा दिखाई देगा अर्थात् जीवन तबाह हो जायेगा। अगर बैर का सूर्य आत्माकाश में उदित हो जाये, तो सूख ही सूखा दिखाई देगा जिससे आदमी का जीवन दुखों का रेगिस्तान बन जायेगा। जिसने भी अपने मन में बैर को निमंत्राण दिया है, उसे जीवन भर सुख, चैन से वंचित रहना पड़ा। जिसने भी बैर का स्वागत किया है, उसका कदम-कदम पर अनादर हुआ है। जिसने भी बैर से दोस्ती की है उसने काँटो को गले लगाया है। जिसने भी बैर का सम्मान किया है उसने तीन लोक में अपना सम्मान खोया है। जिसने भी बैर को अपना आदर्श बनाया है, उसने सम्पूर्ण गुणों का आदर्श

खोया है। बैर चाहे थोड़ा हो या अधिक किन्तु सदैव हानिकारक ही है। नरक-निगोद की यात्राा करानेवाला है।

भगवान पार्श्वनाथ ने अपने जीवन में सदैव प्रेम और क्षमा को ही गले लगाया। तभी वह भगवत्ता को उपलब्ध हो सके। भगवान पार्श्वनाथ ने संघर्ष में भी हर्ष को जिया है। गम में भी खुशी को प्रकट किया है। कष्ट में भी आनन्द को स्वीकारा है। दुःख में भी सुख की खोज की है। बैर में भी क्षमा और प्रेम को जवीन का आदर्श बनाया है। इसी कारण भगवान पार्श्वनाथ का जीवन स्वर्ण की तरह निखरता चला गया और केवलज्ञान व निवार्ण सुख की उपलब्धि कर ली, किन्तु पार्श्वनाथ के भाई का जीव कमठ, सदैव बैर को गले लगता रहा, जिससे उसका जीवन नरक बन गया। कमठ हर भव में आत्मिक आनन्द से वंचित रहा।

भगवान पार्श्वनाथ का निर्वाणोत्सव आज के दिन हुआ था, जिससे यह मोक्ष सप्तमी या मुकुट सप्तमी के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया। जो लोग मुकुट सप्तमी का व्रत करते हैं, उन्हें सम्पूर्ण गृह कार्यों से विरक्त होकर अपना समय धर्मध्यान पूर्वक व्यतीत करना चाहिये। भगवान की सत्ता अपने में समाने वाले हे भव्य आत्माओं ! वैर को छोड़कर प्रेम को स्वीकार करो जिससे भगवान पार्श्वनाथ का चरित्रा तुम्हारी जीवन शैली बन सके, और संसार के महादुःखों से छूटकर आत्मा परमात्म सुख के सागर में निमग्न हो सके।

ॐ

मन की गुलामी ही मनुष्य को धर्म और सत्कर्म से विमुख करती है

आँख का काम वस्तु को देखना है। वस्तु रूपवान है या वस्तु कुरूप है यह निर्णय मन का है। मन एक छलावा है। मन बहुरूपिया है। मन सताता है पीड़ा देता है। मन चालबाज है। मन का काम वस्तु का स्वरूप देखना नहीं वस्तु को नानारूपों में आंकना है। मन को जो वस्तु प्रिय लगती है। वही रूपवान हो जाती है, और मन को जो वस्तु अप्रिय लगती है, वही कुरूप हो जाती है। कभी-कभी एक ही वस्तु में रूप व कुरूपता की कल्पना करने वाला मनुष्य का मन है। अतः वस्तु का स्वरूप मन से नहीं अपितु आत्मा से ही जाना जा सकता है।

जो मन का गुलाम है, वह कभी सुखी नहीं हो सकता। मन की गुलामी ही मनुष्य को धर्म से सत्कर्म से विमुख करती है। मन की गुलामी से आत्मा कभी स्वतंत्राता का अनुभव नहीं कर सकता। मन की गुलामी ही आत्मा की भूल है। परतंत्राता का जीवन जीने वाले कभी भी आनंदित नहीं हो सकते। सुखमय जीवन जीने के लिये मन की गुलामी नहीं अपितु मन को गुलाम बनाना होगा। मन को गुलाम बनाना ही संसार से मुक्ति है जबकि मन के गुलाम हो जाना संसार में नियुक्ति। जैसे सभी बहुऐं सास की गुलाम होती हैं, किन्तु कोई-कोई बहू अपनी सास को भी अपना गुलाम बना लेती है। उसी प्रकार सभी लोग मन के गुलाम होते हैं, किन्तु कोइ-कोई ही अपने मन को अपना गुलाम बना पाते हैं।

मन को गुलाम बनाने के लिये दृढ़ इच्छाशक्ति की आवश्यकता होती है। मन कहे फिल्म देखो। मन कहे सैर करने चलो। मन कहे किसी को पीट दो। तो मन से कह देना मैं ऐसा नहीं करूँगा।

फिर तुम अपने मन से कहना, चलो परमात्मा के गीत गायें। चलो परमात्मा के द्वार पर पूजा का दीप जलायें। चलो किसी गरीब को भोजन करायें। चलो किसी दुःखी मनुष्य को हँसाने चलें। अगर आप सच्ची दृढ़ इच्छाशक्ति वाले होओगे, तो मन भी तुम्हारे घर पानी भरेगा और यदि मजबूत इच्छाशक्ति नहीं है तो मन के अनुसार तुम्हें नाचना ही पड़ेगा। ॐ

ज्ञान और संस्कार जीवन को श्रेष्ठ बनाते हैं

मनुष्य का जीवन संस्कार तथा ज्ञान से श्रेष्ठ बन जाता है। ज्ञान और संस्कार दो ऐसे गुण है जिनके द्वारा नर से नारायण, कंकर से शंकर, बीज से वृक्ष, पाषाण से भगवान बना जाता है। ज्ञान जब अन्तर्मुखी होता है, तो आत्मा में स्थित विकारी भाव स्वयं ही विलीन होना प्रारम्भ हो जाते हैं। ज्ञान चेतना को संस्कारित करने की प्रेरणा देता है, जिससे अनादि अविद्या का नाश होता है और सद्गुणों का विकास होता है। आत्मा अनन्त गुणों का खजाना है। जो मनुष्य अपने आत्मा के गुणरूपी खजाने को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करता है, वही विवेकवान है।

सांसारिक जीवन काँटों का मार्ग है। यदि इस कंटकाकीर्ण मार्ग पर सँभलकर चलना सीख लिया, तो यही जीवन फूलों से सुरभिमय हो जाता है। काँटों के मार्ग को भगवान महावीर राम, हनुमान ने भी जिया, लेकिन उन्होंने सँभलकर चलने से जीवन को सुखमय कर लिया। धर्म की शुरुआत सांसारिक जीवन में ही होती है। धर्म की पूर्णता भी मनुष्य पर्याय में होती है। धर्म का फल देह से मुक्त, शुद्ध, बुद्ध, सिद्धात्मा है। धर्म का पालन करने के लिये ज्ञान का होना अनिवार्य है। अज्ञानपूर्वक धर्म का पालन जीवन के वृक्ष पर काँटों को उगाना है।

ज्ञान और संस्कार जब सम्यक्त्व के साथ होते हैं तो झरने सी शीतलता देते हैं। अन्तस प्राणों में संगीत पैदा हो जाता है। आत्मा का प्रत्येक प्रदेश झंकृत हो जाता है। आनन्द की वर्षा होती है। परमात्म शक्तियों का उद्घाटन होता है। आत्मा का सौंदर्य सम्यक्तव सहित ज्ञान व चरित्रा है। अशांति से मुक्ति दिलाना सच्चे धर्म का फल है। अशांति का अनुभव करो, जिससे आत्मशांति के लिये श्रेष्ठ कर्म करने का विचार बने। पदार्थों में शांति नहीं, पदार्थों के प्रति मोह का त्याग करने में ही सच्ची शांति

है। अनाकुल होना ही सच्चा सुख है।

प्रेम के बिना शक्ति विस्फोटक, तो शक्ति के बिना प्रेम पंगु है

शक्ति संहार का प्रतीक है, तो प्रेम श्रृंगार का प्रतीक है। अकेली शक्ति का उदय उपद्रव को खड़ा करती है। अकेली शक्ति अशांति को जन्म देती है। अकेली शक्ति विध्वंस का आमंत्रित करती है। अकेली शक्ति हिंसा को आश्रय देती है। अकेली शक्ति भय का सम्मान करती है। अकेली शक्ति निर्दयता को स्थान देती है। अकेली शक्ति क्रूरता का ताडंव करती है। अकेली शक्ति निर्दयता को स्थान देती है। अकेली शक्ति क्रूरता का ताडंव करती है। अकेली शक्ति मिटाने को आतुर रहती है। अकेली शक्ति आनन्द का अपहरण करती है। इसलिये कोरी शक्ति कभी भी हमारी जीवन रक्षक नहीं बन सकती, अपितु कोरी शक्ति तो जीवन की असुरक्षा का प्रतीक है। दुनियाँ में जितने भी युद्ध हुए हैं, हो रहे हैं, सब कोरी शक्ति का नंगा प्रर्दशन हैं। कोरी शक्ति के माध्यम से विश्व में शांति का स्वप्न सच नहीं किया जा सकता। कोरी शक्ति का संयोग तो अहंकार को जन्म देती है, और जहाँ अहंकार आ जाता है, वहाँ अधंकार छा जाता है। जहाँ अंधकार छा जाता है, वहाँ दृष्टि खो जाती है। जहाँ दृष्टि खो जाती है, वहाँ टकराने का भय स्वयमेव ही उत्पन्न हो जाता है। इसलिये दुनियाँ में जितने भी देश आज युद्ध की अग्नि में झुलस रहे हैं उसका मूल कारण है शक्ति का अहंकार। आज जो भी देश शक्ति सम्पन्न हैं, वे शक्ति के गर्व से भरे हुए अपने को श्रेष्ठ समझ रहे हैं, जबकि शक्ति का गर्व एक मात्रा क्षुद्र मानसिकता का परचायक है।

आज मनुष्य ने अपने को श्रेष्ठ साबित करने के लिये नाना प्रकार की शक्तियों का आविष्कार करना प्रारंभ किया है। जितने-जितने शक्तिशाली आविष्कार होते जायेंगे, आदमी की बुद्धि, विवेक, विचार, स्वास्थ्य, उतना-उतना ही पतित होता चला

जायेगा। आज अणु-परमाणु बम जैसे शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बनने की होड़ में तो कई देश लगे हैं, किन्तु दया, करुणा, प्रेम वात्सल्य की सम्पन्नता भी हमारे देशों में हो, इस विषय में शायद कोई भी देश गहराई से विचार नहीं कर रहा, और जब तक आध्यात्मिक शक्तियों से सम्पन्न होने की मानसिकता मनुष्य के अंदर नहीं उपजेगी तब तक मनुष्य, समाज, राज्य, देश, विश्व में शांति का परचम नहीं लहराया जा सकता। भौतिक शक्तियों से कोई कितना भी सम्पन्न हो जाये, किन्तु भौतिक शक्तियाँ आत्मिक शांति को उपलब्ध नहीं करा सकती।

शक्ति दो प्रकार की है। एक तो भौतिक शक्ति तथा दूसरी आध्यात्मिक शक्ति यानि आत्मिक शक्ति। जो अपनी आत्मिक शक्तियों को जाग्रत करने में लगा है। आत्मिक शक्ति की प्राप्ति में निरंतर गतिशील है, वह धरती का देवता है, और जो आत्मिक शक्ति से पराड्मुख हुआ केवल भौतिक शक्तियों की खोज में संलग्न है तथा भौतिक शक्तियों से सम्पन्न होकर महाशक्ति बनने के गर्व से भरा हुआ है, वह धरती का शैतान है, और बड़े मजे की बात तो यह है कि इंसान सचमुच शक्तिरूप देवता होकर भी शैतान की जिंदगी जीने को लालायित हो रहा है। शैतान की जिंदगी से क्या कभी विश्वशांति की कामना की जा सकती है, अर्थात् नहीं की जा सकती। अगर हमें शैतानियत को छोड़कर इंसान और इंसानियत का सात्विक पैगाम दुनियाँ को देना है, तो शक्ति सम्पन्नता की थोथी मानसिकता का परित्याग करना ही होगा, तथा आत्म शांति की दिशा में प्रेम के संगीत की स्वर लहरी को गुंजायमान करना होगा। जिससे सारी दुनियाँ में छाई गम की घटायें आनंद की रोशनी से ज्योतिर्मय हो सकें। प्रेम शांति का प्रतीक है। प्रेम सृजन की यात्राा है। प्रेम सौहार्द का सितार है। प्रेम आनन्द की सरिता है। प्रेम शुचिता का प्रथम सोपान है। प्रेम घृणा पर विजय है। प्रेम मन्दिर का देवता है। प्रेम खुशियों का खजाना है। प्रेम जीवन की प्रथम कामना है। प्रेम का अर्थ देह का

आलिंगन नहीं ब्रह्मचर्य की प्यास है। प्रेम का अर्थ वासना की पूर्ति नहीं उपासना का आनन्द है। प्रेम का अर्थ वस्तु की खोज नहीं वस्तु तत्व की खोज है। प्रेम का अर्थ स्वार्थ का जीवन नहीं निस्वार्थ साधना है। प्रेम का अर्थ तड़पन नहीं देवता से मिलन है। जब प्रेम का झरना प्रवाहित होता है, तो जीवन में अपूर्व ही अनुभूति होती है। प्रेम निर्विकार आत्मा की आराधना है। तन के साथ किया गया प्रेम वासना है और चेतन के साथ किया गया प्रेम उपासना है। तन का प्रेम भटकाव है। तन का प्रेम छलावा है। तन का प्रेम दिखावा है तन का प्रेम शाश्वत नहीं क्षणिक है। जबकि चेतन का प्रेम अविनाशी है। चेतन का प्रेम अखंड में डूबना है।

जब तक शक्ति और प्रेम अलग-अलग हैं, तब तक दोनों ही अधूरे हैं। शक्ति प्रेम के बिना विस्फोटक होती है, और प्रेम शक्ति के बिना पंगु होता है। जहाँ प्रेम और शक्ति दोनों का मिलन होता है वहाँ परमात्मा का जागरण होता है। प्रेम के अभाव में शक्ति सिर्फ भटकन है। आज जितने भी महाशक्ति सम्पन्न राष्ट्र है उनके द्वारा प्रेम के अभाव में यह धरती कभी भी नेस्तनावूद की जा सकती है और सच् तो ये है कि बाह्य भौतिक शक्तियों का निमार्ण प्रेम के अभाव में ही संभव है। जब प्रेम का अभाव और द्वेष का सद्भाव हो तभी महाशक्ति बनने का भाव पैदा हो सकता है। अगर वास्तव में समुची मानव जाति की सुरक्षा का भाव हमारे अंदर है, तो हमें चाहिये कि समस्त महाशक्तियाँ अपनी-अपनी आणविक ऊर्जा को समाप्त करें, जिससे राष्ट्रों में आपसी भेद भाव कम होगा, व प्रेम का संचार होगा।

मनुष्य तो स्वयं ही अनन्त शक्तियों का भंडार है, लेकिन मनुष्य ने अपनी शक्ति को पहचाना नहीं है। इसलिये अन्तर में छुपी शक्तियाँ उद्घाटित नहीं हो पाती, और जो शक्तियाँ क्षयोपशम रूप हैं भी, तो उनका सदुपयोग न होने के कारण मनुष्य अपने से अपरिचित ही रह जाता है। मानव के पास अनंत शक्तियाँ तो हैं, किन्तु अनन्त प्रेम के अभाव में वे कार्यकारी नहीं हैं। अतः शक्ति और प्रेम का सम्मेलन ही अन्नत शक्ति रूप परमात्मा का स्वागत

है। परमात्मा होने के लिये उत्कृष्ट शक्ति अर्थात् वज्रवृषभनाराच संहनन की आवश्यकता होती है। बिना उत्तम संहनन के केवलज्ञान और निर्वाण की यात्राा नहीं होती। लेकिन प्रेम के अभाव में उत्तम संहनन भी सातवें नरक की यात्राा में सहयोगी होता है। आत्मा का विध्वसंक ही होता है। जबकि उत्तम संहनन के साथ यदि प्राणीमात्रा के प्रति प्रेभमाव का अभिव्यक्तीकरण हो जाये, तो वही आत्मा केवल ज्ञान की दिव्य रोशनी से ज्योतिर्मय हो जाती है। भगवान आदिनाथ से लेकर महावीर स्वामी तक जितने भी तीर्थंकर, भगवान हुये हैं, उन्होंने उत्तम संहनन के साथ प्राणीमात्रा के प्रति प्रेम को जाग्रत किया, और उन्हें भगवान बनते देर नहीं लगी। हम शक्ति सम्पन्न तो हैं किन्तु प्रेम से विपन्न है, अतः प्रेम से अपनी आत्मा को श्रृंगारित करें।

परमात्मा का भक्त इच्छानुसार विचरण करता है

जीवन में बाधाऐं आ रही है तो समझना चाहिये कि हमने कभी परमात्मा की भक्ति नहीं की। परमात्मा की भक्ति में बाधा खड़ी की है। परमात्मा की भक्ति को तुच्छ समझा है। परमात्मा की भक्ति में रोड़े अटकाये हैं। बाधायें इस बात का प्रमाण हैं। क्योंकि जो भक्त सच्ची श्रद्धा और समर्पण के भाव से परमात्मा की भक्ति-स्तुति आराधना करता है, उसके भव-भव के अर्जित पापकर्म और अनेकानेक बाधाऐं क्षणभर में प्रलय को प्राप्त होती हैं।

परमात्मा का आशीष जिसे प्राप्त हुआ है, वह सच्चा भक्त तीनों लोकों में स्वेच्छानुसार विचरण करने में समर्थ है, अर्थात् उस महाभाग को विचरण करने से कौन रोक सकता है। कोई नहीं। देह को काराग्रह में डाला जा सकता है, किन्तु मन को विचरण करने से नहीं रोका जा सकता। सीता का हरण रावण ने कर लिया। रावण सीता को पटरानी बनाना चाहता था, किन्तु जब रावण सीता के पास जाता था, तब देह तो सामने मिलती थी, किन्तु मन वहाँ नहीं मिलता। सीता का मन न मिलने से रावण वापस लौट जाता था। मन तो सीता का राम के पास था। रावण सीता के मन का न तो हरण कर सका, और न ही राम के पास जाने से रोक सका। यही बात आचार्य श्री मानतुंग स्वामी कह रहे हैं कि हमें काराग्रह में कैद नहीं किया जा सकता। क्योंकि हमारा मन तो तीन लोक के नाथ प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की भक्ति-स्तुति में संलग्न है। जो परमात्मा के सच्चे भक्त होते हैं। उन्हें घर काराग्रह तथा मंदिर आनंदधाम मालूम पड़ता है। जबकि जो परमात्मा के सच्चे भक्त नहीं होते, उन्हें मंदिर भी काराग्रह तथा घर भी मंदिर सा मालूम होता है।

संतचरण-शरण में मरण होना वीरमरण है

जन्म होगा, तो मरण भी होगा, जन्म के साथ मरण का अद्‌भुत, अकाट्य संबंध है। जन्म गरीब घर में भी हो सकता है, अमीर घर में भी हो सकता है। जनम राजा के घर में भी हो सकता है, रंक के घर में भी हो सकता है। जन्म मनुष्य योनि में भी हो सकता है, नरक या निर्यंच योनि में भी हो सकता है। जन्म होने की जितनी स्वतत्रांता है, उतनी ही स्वतंत्राता मरण की भी है। जहाँ-जहाँ जन्म जायेगा, मृत्यु भी वहाँ-वहाँ पहुँचेगी। जन्म के बाद मरण का आना निश्चित है, इसलिये जन्म को समझकर मृत्यु को समझ लेना जरूरी है।

जन्म के बाद मरण होगा, किन्तु मरण के बाद भी जन्म होगा, यह निश्चित नहीं है। जन्म के बाद मरण और मरण के बाद जन्म का होना संसार परिभ्रमण का प्रमाणपत्रा है। जन्म के बाद कोई मरण को प्राप्त होता भी है कोई मरण को मारकर निर्वाण को प्राप्त कर जन्म को नहीं अपितु जीवन को उपलब्ध हो जाता है। जीवन की उपलब्धि ही मानव जन्म की सार्थकता है। जन्म होने के बाद जीवन को समझकर मात्रा जीवन की उपलब्धि के लिये पुरुषार्थ करना विवेक कहलाता है, क्योंकि जीवन की उपलब्धि होने पर जन्म-मरण, संसार परिभ्रमण छूट जाता है। भगवत्ता की प्राप्ति हो जाती है। जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाना ही जीवन है। आत्मा कार स्वभाव पहिचान जाने पर सत्य का मार्ग प्राप्त हो जाता है। सत्यमार्ग पर चलने से परम सत्य प्राप्त होता है।

घर में मरण होना नियति है। रण में मरण होना वीरगति है। संतचरण में मरण होना वीरमरण है। आत्मशरण में मरण होना समाधि है। घर में और रण में मरण होना जन्म-मरण की संतति है। संतचरण और आत्मशरण में मरण होना जन्म-मरण की

संतति का विनाश है। वीरगति से नहीं अपितु वीरमरण से दुःख मुक्ति हो जाती है समाधिमरण से पूर्ण कर्मयुक्ति तथा परमपद में नियुक्ति होती है। जन्म से मरण तक की यात्राा अनेकों बार की है किन्तु वीरमरण की उपलब्धि कभी नहीं की। जो वीरमरण को प्राप्त होता है, वह जीव शीघ्र ही समाधि को उपलब्ध होकर निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। वीरमरण ही वीरत्वपना है।

जीवन में धर्म का प्रारंभ नमन से होता है

नमन की नींव पर धर्म का महल खड़ा होता है। नमन के अभाव में धर्म का होना आकाश के फूल की तरह है। नमन के चमन में ही अमन के पुष्प खिलते हैं। नमन नैतिक और धार्मिक जीवन का आधार है। नमन के अभाव में नैतिकता धराशायी हो जाती है। नैतिकता से विहीन धर्म पंख रहित पक्षी की तरह होता है, जो कभी आकाश की ऊँचाई को माप नहीं सकता।

प्राणीमात्रा के जीवन में धर्म का प्रारम्भ नमन से होता है। नमन शब्द छोटा है किन्तु अर्थ की दृष्टि से व्यापक है। जो छोटा हो उसे कभी छोटा ही नहीं समझना चाहिये। छोटी वस्तु में भी सारतत्व होता है। अगर शरीर में कोई बीमारी हो जाये, तो डॉक्टर द्वारा दिया गया छोटा-सा कैप्सूल पूरी बॉडी की सुरक्षा करता है। यदि छोटा समझकर छोड़ दिया जाय, तो कभी बीमारी का निदान नहीं हो सकता। तलवार की अपेक्षा सुई बहुत छोटी होती है। तलवार तो मिले हुये को तोड़ती है। अखंड वस्तु को खंड-खंड करती है। सुई छोटी है किन्तु खंड-खंड को जोड़ती है। सुई छोटी होने पर भी तलवार से श्रेष्ठ है। श्रेष्ठता स्वयं बड़े होने से नहीं मिलती, अपितु दूसरों को बड़ा बनाने की भावना ही श्रेष्ठता है।

श्रावक और सन्त का जीवन नमन के आधार से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है। श्रावक सन्त को नमन कर श्रेष्ठ श्रावकत्व पाता है और सन्त, अर्हन्त को नमनकर श्रेष्ठ सन्तत्व पाता है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी श्रावक को सर्वप्रथम नमन करने की शिक्षा देते हैं, तो आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी भी साधु को समयसारजी व नियमसारजी में सर्वप्रथम नमन की बात कहते हैं। नमन के आगमन से मन विकार रहित हो जाता है। नमन का भाव मन से कषायों का विसर्जन कराता है। कषाय की मन्दता में

ही धर्म की आराधना की जा सकती है। नमन मन के आँगन को स्वच्छ बनाता है। नमन धर्म का वृक्ष लगता है। वृक्ष हमें संताप से मुक्त कर शांति प्रदान करता है। आज इंसान झुकना नहीं चाहता, दूसरों को झुकाना चाहता है। दूसरों को झुकाना अधर्म है। स्वयं झुकना धर्म की कसौटी है।

हर्ष और संघर्ष में प्रसन्नचित रहना ही समत्व की साधना

भक्त की भगवान के प्रति इतनी गहन पवित्रा भाव दशा होती है, कि वह अपने संघर्षमय जीवन को भी हर्षमय देखता है। संघर्ष में भी हर्ष, आनन्द, पुलक की खोज कर लेता है। जीवन संघर्षों का साहित्य है। अगर मनुष्य अपने जीवन को पढ़ना सीख ले, तो वह संघर्षमय स्थितियों में भी विचलित नहीं हो सकता, क्योंकि जीवन में निरंतर ही उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, और जिसने भी उतार-चढ़ाव भरी जिंदगी में मुस्कराना सीख लिया, उसने दुख को सुख में, गम को खुशी में, विषाद को प्रसन्नता में, ढालकर जीना सीख लिया है। ऐसे लोग पीड़ा, घुटन, त्राास को भी वरदान मानकर कभी गमगीन नहीं होते, अपितु परमात्मा की भक्ति आराधना कर उदय में आ रहे कर्म को कर्ज से मुक्ति मानकर आनंदित होते हैं।

हर्ष में आनन्द की यात्राा करनेवाले लोग संघर्ष में विषाद की काली घटाओं से घिर जाते हैं। इसलिये भगवान महावीरस्वामी ने कहा-कभी हर्ष के क्षणों में आनंदित मत होना। संघर्ष के आने पर कभी खेदखिन्न मत होना, यही शाश्वत सुख की प्राप्ति में प्रथम अनिवार्य शर्त है। जो व्यक्ति थोड़े से हर्ष के साधन मिलने पर इठलाने लगता है, वह संघर्ष के समय अपनी जिंदगी को गमगीन कर लेगा इसलिये जिसने जीवन में हर्ष और संघर्ष दोनों को सहर्ष स्वीकार कर लिया उसे दुनियाँ की कोई ताकत नहीं जो गम के दरिया में डुबो सके। क्योंकि हर्ष और संघर्ष की सत्ता शाश्वत नहीं अपितु क्षणिक है।

हर्ष की जिंदगी जीने वाले लोग काँच की तरह कमजोर हो जाते हैं जैसे काँच थोड़ी-सी ठोकर लगने पर टूट जाता है, बिखर जाता है, उसी प्रकार हर्षमय जीवन व्यतीत करने की चाह रखने वाले लोग संघर्ष की हल्की-सी ठोकर भी सहन नहीं कर पाते,

जबकि संघर्ष की जिंदगी जीने वाले लोग फौलाद की तरह मजबूत होते हैं, वे बड़ी से बड़ी संघर्ष की स्थितियों में भी अपने मनोबल को गिरने नहीं देते। अपितु हँसकर मुकाबला करने को सदैव तैयार रहते हैं। ऐसे संघर्ष में मनोबल रखने वाले लोग ही जीवन में सफलता का विजय का सेहरा बाँधते हैं, और सच कहा जाय तो सफलता इनके चरणों की दासी बन जाती हैं। हर्ष की चाह में जीने वाले लोग गुलामियत को उपलब्ध हो जाते हैं, जबकि संघर्ष में जीने वाले गुलामियत की दीवारों को गिराकर सम्राट जैसे सर्वोच्च शिखर को उपलब्ध हो जाते है। संघर्ष में जीने वाले लोग कभी समय के गुलाम नहीं होते अपितु समय सदैव उनका आत्मीय स्वागत करने के लिये तैयार खड़ा रहता है।

श्री भक्तामर स्त्रोात का एक-एक छंद ऐसा आवदार मोती है, जो संघर्ष की गहन पीड़ा को झेलकर पैदा हुआ है। जो संघर्ष की कसौटी पर कसा है और अनुपमेय आभा से मंडित है। आचार्य श्री मानतुंग स्वामी के गहन संघर्ष की अविकल अनुभूतियों के गर्भ से जन्मा है। भक्ति रस में सरोवोर आचार्य प्रवर कृत यह स्त्रोात परमात्मा की दिव्य आभा से अनुग्रहीत है। भक्त और भगवान के मध्य भक्ति की जो शीतल रस धार प्रवाहित हुई, उसी भक्ति रस में डुबाने वाली स्वर्ग मोक्षमुख की जननी है। वर्तमान की त्रासदी से भरी जीवन शैली में हमें जीने की सुन्दर कला सिखाती है। संघर्ष में भी हर्ष की खोज कराती है। भक्ति वही है। जो आँख के आँसू पोंछकर आनन्द की अनुभूतियों से भरे। दुख के दरिया से निकालकर दरिया दिल बनाये। अतः हम श्रद्धा समर्पण के साथ हार्दिक भक्ति करें, जिससे हर्ष व संघर्ष में समत्वभाव का जागरण हो सके।

ॐ

दूसरों का दुःख बाँटनेवाला मनुष्य धरती का देवता है

हर आदमी अपने जीवन को खुशियों से भरना चाहता है, किन्तु खुशियाँ भी उस आदमी को चुनती है, जो दूसरों का दर्द अपना समझता है। दूसरे जीवों की पीड़ा में दुःखी होनेवाला आदमी खुशियों को निमंत्राण देता है। जिसके अंदर दूसरे जीवों के दुःख बाँटने और दुःख मुक्त करने की पवित्रा भावना होती है उसे खुशियाँ स्वयमेव ही आकर अपना जीवन साथी बना लेती हैं, किन्तु जो दूसरे जीवों को दुःख पहुँचाते हैं, पीड़ा पहुँचाते हैं, दूसरे जीवों को दुःखी देखकर जिनके होंठ मुस्कराते और आँखे हँसती हैं, उनसे खुशियाँ अपना नाता तोड़ लेती हैं। दूसरों का दुःख जिन्हें बाँटने में आनन्द आता है, वे इस धरती के देवता है और जो अपने व दूसरे जीवों के दुःख सदा-सदा को शान्त करने की दिशा में संकल्पित होकर बढ़ना प्रारंभ कर देते हैं वे न केवल धरती के अपितु सम्पूर्ण समष्टि के देवता हो जाते हैं। वे परमात्मा की संज्ञा को उपलब्ध हो जाते हैं, और हर मनुष्य हर जीव की नियति आत्मा से परमात्मा होने की है। अतः स्वपर उपकार की भावना को जीवन में चरितार्थ करने का प्रयास करना चाहिये।

हमारी खुशियाँ दैनिक उपार्जित होनी चाहिये, अर्थात् हमें प्रतिदिन कोई न कोई ऐसे कार्य जरूर करना चाहिये, जिसमें आत्म आनंद की घटना घटती हो। हम आज तक धन संपदा को जोड़ जीवन भर की खुशियों का लुत्फ लेने के बावत सोचते हैं, किन्तु यह हमारी भूल है। जीवन भर साथ देने की कामना वाला धन ही हमारी खुशियों को मौत के घाट उतार देता है। इसलिये हमें खुशियों की खोज प्रतिदिन किसी-न-किसी दुःखी जीव के दुःख को बाँटकर उपार्जित करना चाहिये। रावण के पास तीन खंड की अटूट सम्पदा थी, किन्तु फिर भी रावण के जीवन में खुशी नहीं थी। राम के जीवन में राजपाट की प्राप्ति का योग

बनने वाला था, किन्तु राजपाट की प्राप्ति का योग ही वनवास के संयोग का कारण बन गया। फिर भी राजयोग त्यागकर राम वनवास को स्वीकार कर लेते हैं। उनका वनवास में रहते हुये भी खुशियों का जीवन बिताना अनुकरणीय है। राम सदैव दूसरे जीवों की पीड़ा से दुःखी होकर उसे दुःख मुक्त करने का संकल्प कर लेते थे, और उसे दुःख मुक्त कर ही अपना रास्ता आगे तय करते थे। यही कारण है कि राम का हर कदम खुशियों के द्वारा स्वागत योग्य था।

जो दुःखी जीवों को दुःख मुक्त करता है, वह अपने को ही दुःखों से मुक्त करता है। यद्यपि दुःख हमें सचेत करते हैं, सावधान करते हैं कि हे मानव ! तू सदैव मंगल की कामना कर। अर्थात् प्रत्येक जीवमात्रा के सुखी रहने की भावना कर। जो प्राणीमात्रा के सुखी रहने की भावना करता है वह दुःखों के द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता, अर्थात् दुःख उसके जीवन से विदा हो जाते हैं। खुशियाँ उसका स्वागत करती हैं। सारी सृष्टि उसकी मित्रा बन जाती है। भगवान की आराधना करने वाला आराधक सर्व प्राणियों के प्रति मित्राता का पैगाम देता है, किन्तु जो जीवों को सताता है, वह परमात्मा का आराधक होने पर भी परमात्मा के द्वारा ठुकरा दिया जाता है। जो परमात्मा के द्वारा ठुकरा दिया जाता है। वह अपना जीवन खुशियों से नहीं भर सकता। अतः प्राणीमात्रा पर दया करो। यही भगवान महावीर स्वामी द्वारा प्रदत्त अमृत सूत्रा हमें अनन्त आनन्द, सुख शांति व खुशियों से भर सकता है।

ॐ

अच्छे विचार ही मनुष्य का आभूषण है

मनुष्य एक विचारशील प्राणी है। विचार मानव को मानव भी बना सकते हैं, और विचार ही मानव को दानव भी बना सकते हैं। विचारों का जीवन में बड़ा महत्व है। विचारों से दुनियाँ सुन्दर हो जाया करती है और विचारों से ही असुंदर मालूम होती है। विचारों से ही जिंदगी खूबसूरत जान पड़ती है, और विचारों से ही जिंदगी की सारी खूबसूरती खो जाती है। क्षण मात्रा में सुंदर लगने वाली जिंदगी भी बदसूरत, भारभूत लगने लगती है। विचार दुनियाँ में अपना अद्वितीय अस्तित्व रखते हैं। यदि विचार अच्छे हैं, विचार पवित्रा हैं, तो जीवन पवित्राता की ओर अग्रसर हो जाता है। यदि विचार सुन्दर है, तो जीवन सुन्दर हो जाता है। यदि विचार शांति का संदेश देने वाले हैं, तो जीवन शांतिमय हो जाता है। यदि विचार अंशाति की खोज कर रहे हैं तो सम्पूर्ण जीवन अशान्तिमय हो जाता है, एक विचार ही ऐसा है, जो मनुष्य में मनुष्यता को पैदा करता है। मनुष्यता कोई अन्य वस्तु का नाम नहीं । विचारों का पवित्रा होना ही मनुष्यता का जन्म है।

दुनियाँ में दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं। एक तो अच्छे व्यक्ति, दूसरे बुरे व्यक्ति। आदमी की आदमियत ही अच्छे बुरे का निर्माण करती है। अगर कोई व्यक्ति अच्छा है, तो अपने अच्छे व्यक्तित्व के कारण अच्छा है। अच्छे व्यक्ति को दुनिया सदा याद करती है। अच्छे व्यक्ति को हर कोई चाहता है। अच्छे व्यक्ति की कामना हर जीव करता है। अच्छे व्यक्ति की संगति भी हर कोई चाहता है। अच्छा व्यक्ति कभी भी मरण को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि देह तो सबकी मरना है, किन्तु अच्छाईयाँ कभी भी मरण को प्राप्त नहीं होती। व्यक्ति अगर अच्छा है, तो उसकी अच्छाईयों को हर व्यक्ति स्मरण करता है और जिस व्यक्ति का सदा स्मरण किया जाय, वह मरण को प्राप्त नहीं होता, अपितु मरकर भी अमृत को प्राप्त

हो जाता है। आज भगवान महावीर, गौतमबुद्ध, राम, कृष्ण, ईसा, गांधी आदि को यदि याद किया जाता है तो एक मात्रा अच्छे व्यक्तित्व के कारण ही याद किया जाता है, और रावण, कंस, तैमूर, हिटलर, स्टालिन को उनके बुरे व्यक्तित्व के कारण सदा दूर रहने को याद किया जाता है। आज हर व्यक्ति भगवान महावीर और राम बनना चाहता है, किन्तु रावण और कंस के नाम से कोई पुकारा जाना स्वीकार नहीं करते। इसमें मुख्य कारण अच्छे-बुरे व्यक्तित्व का होना ही है।

हम यदि अच्छा व्यक्तित्व बनाना चाहते हैं तो जीवन में अच्छे व्यक्तित्व के धनी महापुरुषों का जीवन चरित्रा पढ़ना होगा, और केवल पढ़ना ही नहीं अपितु अपना व्यक्तित्व भी उस दिशा में समायोजित करना होगा। महापुरुषों का आचरण जीवन में उतारना होगा। बड़े मजे की बात तो ये है कि आदमी महापुरुष बनना चाहता है किन्तु महापुरुषों का आचरण जीवन में उतारना नहीं चाहता। जबकि महापुरुषों का आचरण जीवन में उतारो न कि महापुरुषों का आचरण जीवन से उतारो। जो महापुरुषों का आचरण जीवन से उतारते हैं वे रावण और कंस बन जाते हैं, वे लादेन और सद्दाम बन जाते हैं, और जो महापुरुषों का आचरण जीवन में उतारते हैं, वे महात्मा बुद्ध और महावीर बन जाते हैं। वे अहिंसा के पालक और सदाचार के उपासक होते हैं। अच्छा सोचें, अच्छे जीवन का निमार्ण करें। जिससे राष्ट्रीय धर्म का, आत्मधर्म का उत्थान हो सके।

ॐ

गुण व्यक्ति के व्यक्तित्व के परिचायक हैं

गुणों की प्राप्ति ही मानव जीवन की सफलता है। मानव गुणों से महानता को उपलब्ध करता है। गुणों के माध्यम से जीवन ऊँचाई को प्राप्त करता है। जो गुणों को सम्मान करता है वह अपने सम्मान अपने गौरव को ही बढ़ाता है, किन्तु जो गुणों का सम्मान नहीं करता, वह संसार में सदा तिरस्कार को अपमान को प्राप्त करता है। गुणों का सम्मान करने का अर्थ है कि गुणवान व्यक्ति का सम्मान करना। क्योंकि गुण कभी गुणी अर्थात् गुणवान व्यक्ति को छोड़कर अन्यत्रा नहीं पाये जाते अतः अगर आप अपने जीवन को सजाना चाहते हो, तो गुणों से सजाओ, और उसके लिये आवश्यक है कि गुणवान का सम्मान करना सीखें। गुणवान व्यक्ति जले हुये दार्मय दीपक के समान हैं। ज्योतिर्मय दीपक के समान है जैसे बुझा हुआ दीप, प्रज्जवलित दीपक के संपर्क से स्वयं को ज्योतिर्मय कर लेता है। ठीक उसी प्रकार गुणवान की संगति हमारे जीवन में गुणों का आविर्भाव कर देती है। अतः गुणों की अभिव्यक्ति के लिये गुणीजनों का सम्मान करना सीखो।

नींबू का गुण खटास है, शक्कर का गुण मिठास है, इसी प्रकार आत्मा का गुण ज्ञान-दर्शन है। नींबू की कीमत अपने गुण से है शक्कर की कीमत अपने गुण से है। यदि नींबू अपने खटास गुण को छोड़कर अन्य रूप हो जाये तो उस नींबू को फिर कोई भी व्यक्ति उपयोगी नहीं समझता अर्थात् फिर नींबू अनुपयोगी हो जाता है, उसी प्रकार जो आत्मा अपने ज्ञान-दर्शन गुण रूप परिणमन करती है, वह शुद्ध बुद्ध एक ज्ञायक स्वभाव को उपलब्ध होती है किन्तु जो आत्मा राग द्वेष रूप परिणमन करती है वह मोक्ष के मुक्ति के क्षेत्रा में अनुपयोगी होती है। अर्थात् ऐसी आत्मा अपने स्वभाव को उपलब्ध नहीं होती। स्वभाव की प्राप्ति के लिये राग-द्वेष से मुक्त ज्ञाता दृष्टा होना अनिवार्य है। जो आत्मा राग-द्वेष आदि दोषों से मुक्त हो गई, वही परमात्मा संज्ञा को प्राप्त करती है। जो परमात्म संज्ञा को उपलब्ध हो गया उसे फिर कभी

बाधक हैं। संसारी रागी-द्वेषी देवी देवताओं का श्रृंगार हैं। इसीलिये दोष वीतरागी परमात्मा को स्वप्न में भी देखना नहीं चाहते। वे कहते हैं कि जब मुझे सारा संसार सम्मान दे रहा है मेरा स्वागत कर रहा है, मुझे निमंत्राण दे रहा है, तो मैं भी उनकी नगरी को कभी छोड़ना नहीं चाहता, और वीतरागी परमात्मा को ईर्ष्या से भरे हुये दोष कहने लगे-- "तेरी गलियों में न रखेंगे कदम, आज के बाद", और यह संसारी प्राणी की विशेषता है कि जब तक सम्मान मिलता है तो ठहरता है। सम्मान मिलता है तो आता है। सम्मान मिलता है तो जाना नहीं चाहता। घर में आया हुआ मेहमान तब तक ही रुक सकता है जब तक आव भगत, सम्मान खूब होता है, किन्तु जब आव-भगत-सम्मान में कमी आ जाती है तो फिर रुकना नहीं चाहता। इसी प्रकार जिस आत्मा ने राग-द्वेष आदि दोषों का सम्मान किया, दोष भी वहीं ठहर गये, किन्तु जिस वीतरागी परमात्मा ने दोषों को सम्मान करना छोड़ दिया, उन्हें दोषों ने भी छोड़ दिया। जहाँ दोष विदा हो जाते हैं, वहाँ गुणों का स्वयमेव ही प्रकटीकरण हो जाता है। गुणों के आते ही आनन्द की यात्राा शुरु हो जाती है। शान्ति का शंखनाद, मुक्ति का प्रसाद, भी मिल जाता है। अतः हम लोगों को चाहिये कि अपने जीवन से दोषों को बुराईयों को व्यसनों को पूर्णतः छोड़कर गुणों की उपलब्धि करें, तो निश्चित ही हमारा जीवन सुखी हो जायेगा।

ॐ

पाना नहीं जीवन को बदलना है-साधना

जीवन की उपलब्धि सरल है, सहज है किन्तु जीवन में आनन्द की उपलब्धि सरल नहीं, अपितु सदाचरण रूप जीवन जीने में ही आनन्द उद्घाटित होता है। अगर जीवन को प्राप्त करके भी आनन्द को प्राप्त नहीं कर पाया, तो यह हमारे जीवन की सबसे बड़ी भूल होगी। यह तो वैसे ही हुआ, कि कोई व्यक्ति सुगंधित फूल को प्राप्त करके भी सुगंध से वंचित रह जाये। शीतल जल का सरोवर पाकर भी प्यासा रह जाये, अथवा मिश्री को पाकर भी मिठास की खोज न कर पाये। सच तो ये है कि आनन्द आत्मा का स्वभाव है, जैसे तिल में तेल होता है वैसे ही आत्मा में आनन्द होता है। आनन्द को कहीं बाहर नहीं अपितु अपने भीतर में खोजोगे तो शीघ्र ही मिल जायेगा, किन्तु सारी मनुष्य जाति आनन्द की खोज में लगी है और वहाँ खोज रही है, जहाँ आनन्द का अता-पता ही नहीं, और जहाँ आनन्द बस रहा है वहाँ मानव की खोज ही नहीं।

आदमी तुच्छ जीवन की उपलब्धि में ही इतिश्री मान बैठा है इसीलिये आदमी की जीवन्त होने की उपलब्धि खो गई है। जीवन पाना कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि नहीं अपितु जीवन को पाकर के पुरानी मान्यताओं, सडे-गले संस्कारों को और बचपन की रूढ़ियों को तोड़कर कुछ नये होने, नया पाने के मार्ग पर चलना ही महत्वपूर्ण उपलब्धि है। आदमी पुरानी जिंदगी को निरन्तर दुहरा रहा है, किन्तु कुछ नया करने का साहस नहीं जुटा पा रहा। भगवान महावीर स्वामी ने अपने सम्पूर्ण पुरातन संस्कारों का अन्तकर नयी जिंदगी की शुरुआत की, अतः वे आत्मा से परमात्मा बन गये, किन्तु हम उन्हीं पुरातन संस्कारों को छाती से बाँधे कुछ नया पाने की सोच रखते हैं, जो निरी मिथ्या है। नये जीवन की शुरुआत तभी हो सकती है, जबकि हम अपनी पुरानी

दुनियाँ को पूर्णतः तबाह करने के लिये तैयार हों। पुराना कुछ भी न बचे, तो आप अपने को बिल्कुल नया पायेंगे, और अगर पुराना संस्कार थोड़ा-सा भी बच गया, तो वह तुम्हारी नूतन उपलब्धि को भी कचरा बना देगा। बिल्कुल वैसे, जिस प्रकार पात्रा में अगर जरासी भी खटास रह जाये तो वह सम्पूर्ण मिष्ठ दूध को खट्टा कर देगी, फाड़ देगी।

"पाना नहीं जीवन को बदलना है साधना। धुँऐं-सा जीवन मौत है, जलना है साधना।" अर्थात् जीवन को प्राप्त करना साधना नहीं, अपितु जीवन को बदलना ही साधना है, और बड़े मजे की बात तो यह है कि आदमी अपने वस्त्राों को बदलकर नये होने का भ्रम-कर रहा है। मिट्टी की दीवारें रंग-रोगन कर देने से कभी नयी नहीं हो सकती, और बूढ़ा आदमी नवीन वस्त्रा पहनकर भी नया नहीं हो सकता। इसके लिये तो नूतन यौवन सम्पन्न् देह चाहिये। इसी प्रकार आदमी अगर नया होना चाहता है, नवीन जीवन का अनुभव करना चाहता है तो उसे देह के भीतर जो देवता बैठा है उसे सदसंस्कारों से नूतन बनाना चाहिये। जब तक जीवन में व्रत नियम, संयम उपलब्ध नहीं होते, तब तक पुराना जी जीवन जीने का तरीका है। मनुष्य को चाहिये कि वह अपने जीवन में कुछ ऐसा करे जिससे पाशविक वृत्ति और मानुषी वृत्ति में अन्तर घटित हो सके। अभी तो मनुष्य और पशु के जीवन में कोई फर्क ही मालूम नहीं पड़ता। मात्रा संस्थान का अन्तर ही मनुष्य और पशु में दिखलाई देता है।

ॐ

मूर्च्छा का जीवन जीता जागता नरक का जीवन है

मूर्च्छा में जीने वाले कभी मोक्ष को उपलब्ध नहीं होते। शाश्वत सुख की किरण उनके जीवन में कभी नहीं फूटती। जो मूर्च्छा को छोड़कर चेतना के जागरण में निरत हैं, वे शीघ्र ही मुक्ति रमा को अपनी जीवन संगिनी बना लेते हैं। मूर्च्छा का अर्थ है स्वयं से अपरिचित होना। मूर्च्छा का अर्थ है अपनी निजी संपत्ति से बेखबर होना। मूर्च्छा का अर्थ है पर वस्तु के प्रेम में पागल होना, और अपने भीतर की प्रेम सत्ता का अनुभव नहीं होना। तुम स्वयं अपने में प्रेम का शीतल निर्झर हो। तुम स्वयं प्रेम का संगीत हो। तुम स्वयं प्रेम का मंदिर हो, किन्तु तुम्हें अपनी शक्ति का अहसास ही नहीं है। तुम्हें अपनी अमूल्य संपदा का पता ही नहीं है। तुम्हें अपने भीतर लहराते परमात्मा के समुन्दर का परिचय ही नहीं है, इसीलिये तुम अपने से बाहर कुछ पाने के लिये बैचेन हो, और मजे बी बात तो ये है कि तुम अपनी बैचेनी के मालिक स्वयं हो और दर्शक भी स्वयं हो। काश वह दृष्टि जीवन में आ पाती, जो हमारी बैचेनी को समाप्त कर देती तो सारी मूर्च्छा भी पलायन कर जाती और चेतना का जागरण हो जाता।

फूल अपने में आनंदित है, झरने अपने में आनंदित है भँवरे अपने में आनंदित है। एक मात्रा मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो निरन्तर चिंतित है परेशान है। मानव अपनी व्यर्थ की मूर्च्छा वासनाओं से दुःखी है। जो है उसमें संतोष नहीं किन्तु जो नहीं है उसकी आकांक्षा है, और इस दुनियाँ में आज तक कभी भी किसी की आकांक्षायें पूर्ण नहीं हुई फिर भी आदमी का मन आकांक्षाओं की फैक्टरी बना हुआ है। मूर्च्छा आदमी को मुर्दा बना देती है। मूर्च्छा की भूख कभी नहीं मिटती। मूर्च्छा सुनियोजित पागलपन है। मूर्च्छा विवेक पर पत्थर रख देती है। मूर्च्छा जीवन के गुलशन को उजाड़ देती है। मूर्च्छा कलुषता और अपवित्राता का आह्वान

करती है। जीवन की सम्पूर्ण सफलता यही है कि आदमी मूर्च्छा का त्याग कर संतोषी बने। संतोष के सरोवर में ही आनन्द का मिष्ठ जल भरा होता है।

मूर्च्छा का जीवन तो जीता जागता नरक का जीवन जीना ही है। मूर्च्छा की कली कभी भी पुष्प की तरह खिल नहीं सकती। जब चेतना का प्रवाह स्वयं की ओर होगा तभी मूर्च्छा का उपद्रव मिट सकता है जो एक बार भी स्वयं की दिशा में अपना कदम रखता है वह मूर्च्छा के कर्दम से कीचड़ से मुक्त हो जाता है। राम ने कभी भी मूर्च्छा का स्वागत नहीं किया, यही कारण है कि राज्य का त्याग, और वनवास का वरण करने में उन्होंने किंचित भी देरी नहीं की, और न ही अपने मन में मलीनता को आने दिया। वहीं रावण मूर्छित होने के कारण अपने सम्पूर्ण राजपाट को अपना जीवन का सर्वस्व समझता रहा, और उसी नशे में उसने नैतिकता को भी तिलांजलि दे दी। जो व्यक्ति मूर्च्छा के प्रति जितना शून्य होता जाता है, उसके जीवन में उतनी ही शांति का अवतरण होता जाता है। वीतरागी परमात्मा ने सम्पूर्णतः मूर्च्छा का त्याग कर दिया, मूर्च्छा को जन्म देने वाले मोह का नाश कर दिया, इसी कारण वे अनन्त सुख को उपलब्ध हो सके। परमात्मा की दिव्यता को अपना लक्ष्य बनाना चाहिये और मूर्च्छा को त्यागकर परमात्मा जैसा उत्कृष्ट पुरुषार्थ जाग्रत करना चाहिये। सुख संपदा में नहीं आत्मा की गहराई में डूबने से मिलता है। आत्मा सुख का खजाना है। परमात्मा उस खजाने का मालिक है। संयमी श्रमण उस खजाने का भविष्य में अधिकारी है, क्योंकि जो मूर्च्छा को विसर्जित कर संयमी बनता है, वह परमात्म पद को प्राप्त कर आत्म संपदा का मालिक बनता है।

ॐ

सत्संगति तीर्थों का तीर्थ है

जीवन में संगति का बड़ा महत्व है। जैसी संगति करोगे, वैसे ही बनोगे। अच्छी संगति करोगे, अच्छा जीवन होगा। बुरी संगति करोगे, जीवन बुरा होगा। प्रकृति का यह नियम है जिस निमित्त की संगति करोगे, उपादान को उसी रूप पाओगे। जल यदि ईख की संगति करता है, तो मीठेपन को प्राप्त होता है। सभी लोग प्रशंसा करते हैं। यदि वही जल नीम की संगति करता है तो कड़वा हो जाता है। आँवले की संगति करता है, तो कषायला हो जाता है। जल का उपादान तो समान है। निमित्त की संगति से जल कभी मीठा तो कभी कड़वा, कभी कषायलेपने को धारण करता है। जल का उपादान खोया नहीं। जल का उपादान मरा नहीं जल का उपादान समाप्त नहीं हुआ। संगति से जल ने अपना भी स्वभाव वैसा बना लिया। हमें अपने विवेक से अच्छी-बुरी संगति का निर्णय करना होगा।

परमात्मा की भक्ति, स्तुति, आराधना, वही कर सकता है, जो स्वयं परमात्मा होना चाहेगा। परमात्मा की संगति करने वाला नियम से परमात्मा बनेगा। एक मृण्मय किन्तु ज्योतिर्मय दीप की संगति यदि बुझा हुआ दीप करता है, तो वह भी नियम से ज्योतिर्मय हो जाता है। स्वयं को भी आलोकित करता है, और संगति करने वाले को आलोक से भर देता है। जब मृण्मय दीप की यह विशेषता है तो परमात्मा तो चिन्मय दीप है। कभी भी बुझने वाला नहीं। शाश्वत आलोक से भरा हुआ है। ऐसे परमात्मा चिन्मयदीप की संगति से देह में विराजित चिन्मय दीप क्या आलोकित नहीं होगा, अर्थात् अवश्य होगा। चिन्मय दीप तो मृण्मय दीप से भी कहीं श्रेष्ठ है। अंतस् चिन्मयदीप का आलोकित होना ही परमात्मा होना है।

सत्संगति सबसे बड़ा तीर्थ है। सत्संगति ही स्वर्ग है। बुरी संगति ही नरक है। सत्संगति के लिय यदि सम्पदा भी छोड़नी पड़े

तो भी सत्संगति करना चाहिये। कुसंगति के लिये यदि सम्पदा भी मिले, तो भी कुसंगति नहीं करना चाहिये। सत्संगति में मरना भी श्रेष्ठ है, किन्तु कुसंगति में जीना भी अपराध है।

दूध-अपनी संगति में आनेवाले जल को अपने जैसा बना लेता है। परमात्मा भी अपनी संगति में आनेवाले भक्त को परमात्मा बना देता है। जैन दर्शन में यह विशेष बात कही गई है। परमात्मा भक्त को भी अपने जैसा बना लेता है। अन्य दर्शनों में भक्त को भगवान का अंश माना गया। जैन दर्शन कहता है, तुम स्वयं परमात्मा हो। तुम्हारी आत्मा में भी परमात्मा बनने की शक्ति विद्यमान है। तुम सच्चे परमात्मा की संगति भक्ति करोगे तो परमात्मपने की अभिव्यक्ति भी होगी। जैसे बीज में वृक्ष छिपा है। जरा-सा मिट्टी का स्पर्श मिलता है, वृक्ष प्रकट होने लगता है। इसी प्रकार परमात्मा रूपी पारसमणि का स्पर्श जब लोहा करता है, तो वह भी स्वर्ण बन जाता है। लोहा भी जंगरहित होना चाहिये। जंग लगे हुये लोहे को पारसमणि भी स्वर्ण नहीं बना सकता। इसी प्रकार जिसे खोटी मान्यताओं, मूढ़ता और मिथ्यात्व की जंग लगी है, उस आत्मा को स्वर्ण-सा पूर्ण शुद्ध नहीं बनाया जा सकता। अतः जंग को हटाओ। लोहे को स्वच्छ करो। पारसमणि का स्पर्श कराओ, और स्वर्णता को प्राप्त करो।

ॐ

क्रोध विवेक की हत्या करके आता है

क्षमा भाव वीरों का आभूषण है। क्षमा धर्म श्रावक का सौंदर्य है, और उत्तमक्षमाधर्म निर्ग्रंथ साधकों की पूँजी है। क्षमा जहाँ भी है, आदरणीय है। क्षमा जहाँ भी है पूज्यनीय है, स्मरणीय है, प्रेम की पात्रा है। क्षमा का अमृत जिसने भी पिया है, उसका जीवन अमरता को उपलब्ध हो गया, किन्तु क्षमा को जिसने भी खोया, वह संसार की वादियों में ही खो गया। संसार के दुःखों से उसी का जीवन बोझिल होता है, जिसके हृदय में क्षमा नहीं होती। क्षमावान की आरती देवता भी उतारते हैं। क्षमावान की तीनों लोकों में पूजा होती है। जिस घर में क्षमा की पूजा की जाती है, वह घर स्वर्ग से भी सुन्दर होता है, क्योंकि उस घर में कभी लडाई-झगड़े नहीं होते। जिस घर में लडाई-झगड़े नहीं होत, वहाँ आपस में प्रेम, प्यार, सामंजस्य होता है। अतः आज उत्तमक्षमा धर्म के दिन हम सभी अपने घर परिवार को सुन्दर बनाने के साथ-साथ अपनी आत्मा के स्वभाव रूप क्षमा धर्म को ही अंगीकार करने का प्रयास करें, जिससे आत्मा अनादिकाल की दासता को छोड़कर अनन्त-अनन्त काल तक शाश्वत सुख का वरण कर सके।

आज घर-घर में अशांति का वातावरण है, गली-मोहल्लों में कोहराम मचा है, उसका मूल कारण है अपने जीवन में सहनशीलता व क्षमाभाव का अभाव। अगर हमारे जीवन में थोड़ा सहनशीलता का भाव और क्षमा की भावना आ जाये तो ९०÷ झगड़े आपोआप समाप्त हो जायेंगे। जब क्षमाभाव हमारी आत्मा से मर जाता है तो क्रोध का नाग काटने लगता है, और मात्रा फुंकारता ही नहीं अपितु हमारी आत्मा को डस लेता है। परिवार की खुशियों को सीधा निगल लेता है। क्रोध एक ऐसी अग्नि है, जो आँखों से दिखाई नहीं देती, किन्तु अंदर ही अंदर जलाकर खाक कर देती है। अतः क्रोध को छोड़कर क्षमा धर्म को अंगीकार करो, जिससे

जीवन अशांति से मुक्त होकर शाश्वत शांति ही दिशा में अग्रसर हो सके। क्रोध में आदमी पागल हो जाता है। क्रोध में आदमी अंधा हो जाता है। क्रोध एक ऐसी बीमारी है, जिसे आ गई, तो मिटाकर ही जाती है। क्रोध भद्दा है, विरूप है, कुरूप है, क्रोध में आदमी को होश नहीं रहता, और जब जीवन से होश पलायन कर जाता है तो सम्पूर्ण जीवन नरक बन जाता है। होश के जाते ही जीवन में दोष पैदा हो जाते हैं। सूर्य प्रकाश के जाते ही जिस प्रकार रात्रि में कीड़े-मकोड़े पैदा हो जाते हैं। उसी प्रकार होश के जाते ही अवगुणों के कीड़े-मकोड़े उत्पन्न् हो जाते हैं। क्रोध में विवेक नहीं रहता, और विवेक में कभी क्रोध नहीं आता।

क्रोध बैठता तो सिर पर है, किन्तु होता अधोगामी है, और क्षमा बैठती तो चरणों में है किन्तु होती ऊर्ध्वगामी है। क्रोध पति से पत्नी पर पत्नी से बच्चों पर और बच्चों से अपनी गुड़िया या खिलौनों पर उतरता है, अतः क्रोध सदैव निम्नगामी होता है। क्रोध में आदमी का चेहरा बिगड़ जाता है, होंठ डसने लगता है, शरीर कंपायमान हो जाता है। क्रोध में आदमी का सभी होश हवास खो जाता है। इसलिये क्रोध को छोड़कर क्षमा के अमृत का रसपान करना चाहिये। पांडवों ने क्षमा को धारण किया तो मोक्ष पद पाया। कौरवों ने क्षमा को छोड़ा तो पतन हुआ। क्रोधी व्यक्ति के जीवन में कभी शांति के पुष्प नहीं खिलते। क्रोधी व्यक्ति तो आतंकवादी की तरह होता है। जैसे आतंकवादी में दया नहीं होती, उसी प्रकार क्रोध में अंधा आदमी अपने सद्गुणों का विनाश कर देता है।

ॐ

ईमान का इनाम है इज्जत

दुनियाँ में दो तरह के ही लोग होते हैं। ईमानदार और बेईमान। ईमान जिसकी जिंदगी हो, वह ईमानदार होता है। ईमान की जिंदगी जीने वाला धरती का भगवान है। जो व्यक्ति अपने ईमान को नहीं खोता, उसकी हिफाजत भगवान करता है, किन्तु जो ईमान को जीवन से निकाल देता है, उसकी हिफाजत अपने सगे भी नहीं करते अपितु बेईमान को अपनी करनी का फल नरक-निगोदादि दुर्गतियों में भोगना पड़ता है।

ईमान आदमी के चरित्रा निर्माण में अग्रणी भूमिका अदा करता है। ईमान के अभाव में सम्पूर्ण चरित्रा नकली हो जाता है। ईमान ही व्यक्ति को धर्मात्मा बनाता है। क्योंकि सच्चा धर्मात्मा वही है जिसके जीवन में ईमान है। ईमान के रहने पर सभी गुण स्वयमेव आना प्रारंभ हो जाते हैं। ईमान आदमी की आदमियत को दर्शाता है। ईमानदार आदमी दुःखी होकर भी दुःख को महसूस नहीं करता, किन्तु बेईमान सुखी होकर भी अपने को दुःखी अनुभव करता है। जो व्यक्ति जितना धनवान होगा वह उतना ही बेईमान होगा। क्योंकि धन की बचत के लिये उसे कई प्रकार के झूठ का सहारा लेना पड़ता है। धनवान व्यक्ति अपने को कभी धनवान नहीं कहता अपितु पूछने पर यही कहता है कि जिंदगी कट रही है, किन्तु जो ईमानदार होता है। वह संतोषी होता है। वेश्या का रूप और आदमी की बेईमानी अधिक समय छुपी नहीं रहती। बेईमानी तात्कालिकता में सुखद किन्तु परिणाम में दुखद होती है। ईमान से यश और बेईमानी से अपयश मिलता है। आज आदमी ने ईमान की जिंदगी छोड़ दी है। इसीलिये दुःखी मालूम पड़ता है। आज देखा जाये तो ९५÷ आदमी को दुःख अपने ईमान को खोने से है। अगर ईमान की जिंदगी ईजाद कर ली जाय, तो आदमी भी आपोआप सुखी हो जाय। आदमी प्रकृति को दोष देता है, कि प्रकृति बदल गई। जबकि देखा जाय तो प्रकृति ने

अपना ईमान नहीं खोया। अपितु आदमी ने ईमान खो दिया है। इसलिये प्रकृति की ईमानदारी पर शक करता है।

ईमान सभी धर्मों का सार है। ईमान दुनियाँ के सम्पूर्ण धर्मों का धर्म है। कोई जैनधर्म को मानता है, तो कोई हिंदुधर्म को, कोई इस्लाम को तो कोई ईसाई धर्म को मानता है, किन्तु ईमान धर्म के अभाव में सभी धर्म अंधे हैं। ईमान के अभाव में धर्म को मानना वास्तविकता में धर्म की अवमानना है, क्योंकि ईमान के अभाव में धर्मात्मा पाखंडी हो जाता है, जिससे धर्म का वास्तविक स्वरूप भी अपनी पहिचान खो देता है और परंपरा ही धर्म का लिबास ओढ़ लेती है। बेइमानी से कभी इज्जत नहीं मिलती, अपितु इज्जत ईमान का नाम है, और सच तो ये है कि बेईमानी में प्राप्त हुई इज्जत से, ईमानदारी में प्राप्त हुई बेइज्जती श्रेष्ठ है।

ॐ

भक्तियोग के माध्यम से मन की चंचलता समाप्त होती है

धर्म साधना के दो मार्ग है। प्रथम भक्तियोग एवं दूसरा ध्यानयोग। ध्यानयोग की सिद्धि भक्तियोग पूर्वक होती है। भक्तियोग के अभाव में ध्यानयोग की उपलब्धि होना कठिन है। भक्तियोग प्रथम आराधना है। भक्तियोग के माध्यम से मन की चंचलता समाप्त होती है। मन की चंचलता के समाप्त होने पर ही सहज ध्यानयोग की उपलब्धि होना शुरू हो जाती है।

जन्म-मरण की परम्परा को समाप्त करने के लिये सम्यग्दर्शन चाहिये। यदि सम्यग्दर्शन की पूर्णता है, तो जन्म-मरण की परम्परा नष्ट हो सकती है किन्तु अंगहीन सम्यग्दर्शन जन्म-मरण की परम्परा को मिटाने में समर्थ नहीं है? जिस प्रकार अक्षर से रहित मंत्रा विष की वेदना को समाप्त करने में समर्थ नहीं है। एक अक्षर का भी मंत्रा में बहुत बड़ा महत्व है। यदि पूर्ण मंत्रा हो, तो विष की वेदना समाप्त हो सकती है। हमें भक्ति आराधना करते समय भक्ति काव्यों को पूर्ण शुद्धिपूर्वक करना चाहिये, जिससे उस भक्ति काव्य को निजभावों में समाहित किया जा सके।

आत्मशान्ति के लिये परमात्मा की भक्ति अचूक उपाय है। इस भक्ति की महिमा को समझकर समस्त महापुरुषों ने इसका आचरण किया है। भक्ति जब आचरण में समाहित हो जाती है, तो अन्तस में अद्‌भुत आनन्द बरसने लगता है। आचार्य मानतुंग स्वामी ने भक्तामर जी स्त्राोत में भगवान आदिनाथ के गुणों को स्मरण कर श्रद्धा को संकल्प को दृढ़ किया है। यह श्रद्धा और संकल्प हमारे मार्ग को प्रशस्त करते हैं।

ॐ

जाले में नहीं उजाले में जिओ

जिंदगी को दो तरह से जिया जा सकता है। जाले में या उजाले में। अंधकार में या प्रकाश में। जाले में जीनेवाले मकड़ी का जीवन जीते हैं। जैसे मकड़ी स्वयं जाल तैयार करती है और अन्य जीवों को अपने जाले में फँसाकर एक दिन स्वयं ही उस जाले में उलझकर मरण को प्राप्त हो जाती है उसी प्रकार आदमी अपना जाल स्वयं तैयार करता है, और घर-परिवार रूपी जाल में उलझकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, इसलिये हर इंसान को चाहिये कि वह जाले में नहीं उजाले में जीना सीखे।

संसार के लिये जीना जाले में जीना है, जबकि संसार से मुक्त होने के लिये की जाने वाली धर्मसाधना-- धर्माराधना उजाले में जीना है। अर्धम जाल है धर्म उजाला है, प्रकाश है। हमें अपने जीवन में प्रतिदिन कम से कम एक घंटा धर्म के लिये जरूर देना चाहिये, जिससे उजाला प्राप्त करने की बैटरी चार्ज होती रहे, अन्यथा अंधकार हमें किसी न किसी दुःख के गढ्ढे में जरूर गिरायेगा। धर्म का उजाला हमें नरकादि दुर्गतियों से बचाकर शाश्वत सुख की राह पर ले जाता है, "धर्म हमें मार्ग ही नहीं अपितु मंजिल भी देता है।"

जिंदगी में धर्म का मार्ग अपनाना चाहिये, जिससे इस लोक और परलोक में कभी दुःख की प्राप्ति न हो।

अपने घर की देहरी पर--दीप इक जलाओ तुम।
हो सके तो राहों को--फूलों से सजाओ तुम।।
ढलचला है यह जीवन--सांझ की ये बेला है।
कल भी तू अकेला था--आज भी अकेला है।।

अपने जीवन में धर्म का ऐसा परम प्रदीप आलोकित-करो, जो अपने साथ-साथ दूसरे को भी ठोकर लगने से बचा सके।

आत्मा का मृदु बनायें, कठोर नहीं।

जिसके जीवन में मृदुता होती है, कोमलता होती है उसक जीवन सदा गुल की तरह महकता है। परिणामों की कोमलता ही धार्मिक व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहिचान है। हम धार्मिक हैं या नहीं, इस बात का पता परिणामों से ही लगाया जा सकता है। जब तक हमारे परिणाम में, हमारी आत्मा में कठोरता होगी, तब तक धर्म का बीज अंकुरित नहीं हो सकता। क्योंकि बीज सदैव मुदु भूमि में ही अंकुरित होता है, उसी प्रकार धर्म का बीज भी आत्मा की मृदुतापूर्ण अवस्था में ही अंकुरण को प्राप्त होता है। आज तक जितने भी महापुरुष भगवान महावीर, राम, हनुमान आदि परम पद को प्राप्त हुये हैं, उन्होंने अपनी आत्मा की कठोरता को नष्टकर मृदु कोमल बनाया है, तभी वे जनमानस के लिये परमश्रद्धा का स्त्रोात बन सके, तो वहीं रावण, कंस आदि दुरात्माओं ने आत्मा को कठोरता की दिशा में अग्रसर किया, इसीलिये आज उनका कोई नाम लेने वाला भी, उनके पदचिन्हों को अपना आदर्श बनाने वाला भी नहीं है। अतः हम अपनी आत्मा को मृदु बनाकर मार्दवभाव का स्वागत करें।

उत्तम क्षमा धर्म का पालन भी वही जीव कर सकता है जो अपनी आत्मा को मृदु बनाता है, अर्थात् मान कषाय का मर्दन करने वाला व्यक्ति ही क्षमा धर्म को अपने जीवन में स्वीकार कर सकता है। जहाँ मान का मर्दन, मान का क्षय, मान का हनन होता है, उसी आत्मा में मार्दव धर्म प्रकट होता है। आज तक आदमी अपने मान सम्मान के पीछे पागलों की तरह भागता रहता है। मान-सम्मान की आकांक्षा मनुष्य को विवेकहीन बनाती है। मान कषाय हमें सदैव गर्त की ओर ले जाती है। मान कषाय हमारे जीवन में जहर घोलने वाली है। मान कषाय ही चतुर्गति रूप संसार के दुःखों से हमारा साक्षात्कार कराती है। मान कषाय आत्मा की विशुद्धि को नष्ट कर देती है। अतः मान कषाय को छोड़कर परिणामों को कोमल बनाते हुये अपने जीवन को सुखमय

बनाना चाहिये।

सत्य बड़ा शर्मीला है, वह अहंकार के पथरीले मार्ग पर नहीं चलता। अहंकार में आदमी सत्य को भी नहीं पहचानता। अहंकार सत्य से कोसों दूर रहता है। परमात्मा की अनुभूति और अभिव्यक्ति करने के लिये हमें अहंकार और मैं के भाव को भी विसर्जित करना होगा। परमात्मा प्रेम पाने में सदैव 'मैं' का भाव बाधक बनाता है। एक दिवस महारानी विक्टोरिया जब अपने किसी आवश्यक कार्य को पूर्ण कर अपने घर लौंटी, तो उन्होंने अपने घर के दरवाजे अंदर से बंद पाये। धीरे से दस्तक दी तो अंदर से आवाज आई कौन है? महारानी ने कहा मैं हूँ महारानी विक्टोरिया। यह उत्तर देते ही अंदर से कोई जवाब नहीं आया। इसी प्रकार की प्रश्न उत्तर वार्ता को काफी समय हो गया किन्तु दरवाजे नहीं खुले, तो अंत में महारानी विक्टोरिया ने यह पूछे जाने पर कि कौन है? उत्तर दिया कि आपके चरणों की दासी। जैसे ही यह उत्तर दिया कि तुरन्त दरवाजे खुल गये। अतः ध्यान रहे अगर हम परमात्मा का द्वार और प्रवेश चाहते हैं। तो हमें भी अपने "मैं" के भाव और अहंकार को छोड़कर 'चरण का दास' यह भाव अपनी आत्मा में जगाना होगा। फिर आपके जीवन में स्वयं ही परमात्मा का द्वार खुल जायेगा, किन्तु अहंकार में परमात्मा हम से कोसों दूर हो जायेगा। अगर आज हम अपने अहंकार को छोड़ दे, तो मार्दव भाव हमारे जीवन में आ जायेगा, और अनादि से भटक रहे नीच गतियों से हमें मुक्ति मिल जायेगी।

ॐ

चेतना की स्वच्छता के लिये चित्त को निर्मल बनाओ

आत्मा का असली चेहरा शुद्धज्ञान-दर्शन है। आत्मा का असली सौंदर्य भी शुद्धज्ञान में प्रतिबिम्बित है। आत्मा जब राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि कषाय और विकारी भावों से रहित होता है, तभी अपने शुद्धस्वभाव को प्राप्त होता है। जिसे आत्म सौंदर्य का अनुभव हो जाता है, वह बाह्य सौंदर्य की कभी कामना नहीं करता।

चेहरा मनुष्य के चित्त की तस्वीर दिखाता है, और चेतना प्राणीमात्रा की आत्मा को दिखाती है। मनुष्य के चित्त में क्या-क्या विचारों का वलय उठ रहा है? चित्त की दिशा क्या है? इस बात का पता मनुष्य के चेहरे को देखकर लगाया जा सकता है। वहीं चेतना अर्थात् ज्ञान दर्शन की परिणति क्या है ? ज्ञान-दर्शन यदि अशुद्ध है, अशुभ की दिशा में कार्य कर रहा है तो आत्मा विकृति को प्राप्त होती है, यदि ज्ञान-दर्शन शुभ की प्रवृत्ति करता है या शुद्ध को विषय बनाता है तो आत्मा का स्वभाव प्राप्ति की दिशा में सृजन चल रहा है हमें विकृति में नहीं प्रकृति मे जीना सीखना चाहिये। विकृति में जीने वाले कमजोर लोग हैं, जिनका आपने चित्त पर कोई नियत्रांण नहीं होता। स्वच्छंद चित्त ही चेतना को गंदा बनाता है। चेतना का गंदा होना ही संसार है। जब तक चेतना दूषित है, तब तक संसार मुक्ति नहीं होती। चेतना जितनी स्वच्छ होती जाती है, मोक्ष उतना ही निकट होता जाता है। चेतना की स्वच्छता के लिये चित्त को निर्मल करना सीखो।

हम जितने दर्पण स्वीकार करेंगे, उतने ही खंड-खंड होते जायेंगे। राग-द्वेष से रहित वीतरागी परमात्मा को ही अपना दर्पण बनाओ जिससे वीतरागता का प्रतिबिम्ब हमारे अंदर भी बन सके। दुनियाँ के समस्त दर्पण जैसा चेहरा व्यक्ति का होता है, वैसा ही दिखाता है, किन्तु वीतरागी परमात्मा रूपी दर्पण में बाहर का

चेहरा नहीं अपितु आत्मा का असली चेहरा नजर आता है। परमात्मा का दर्पण तो एक्सरे मशीन जैसा है।

ॐ

धर्म मुख का स्वाद नहीं सुख की साधना है

जीवन का सच्चा आनन्द पदार्थ में नहीं परमार्थ में है। पदार्थ चेतना को मूर्च्छा में डालता है जबकि परमार्थ चेतना की गहन जाग्रति है। आनन्द मूर्च्छा से मुक्त है। जब तक मूर्च्छा की दीवारें हैं, तब तक आनन्द से परिचय नहीं हो सकता। चेतना की जाग्रति ही आनन्द है, तथा मूर्च्छा से पूर्ण मुक्ति ही परमानंद है। मनुष्य अपने आप में स्वयं परमात्मा का दिव्य सौन्दर्य समाये हुये है, लेकिन वह तब तक प्राप्त नहीं होता जब तक मूर्च्छा के बादल नहीं छँट जाते। आत्म जाग्रति के होते ही परमात्मा की दिव्यता मन के आँगन में उतर आती है। मन की सुन्दरता से सम्पूर्ण सृष्टि परमात्मा के सौंदर्य का बोध कराती है।

धर्म जीवन का अभिनव प्रयोग है। धर्म प्रकृतिस्थ होने की कला है। धर्म की शुरुआत वैचारिक क्रान्ति से होती है और आत्मिक शक्ति पर पूर्णता होती है। धर्म की दिशा में कदम रखते ही विचारों में अपूर्व परिवर्तन होता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के विचार प्रकट होते हैं। वस्तुतः धर्म की उपस्थिति में इन श्रेष्ठ विचारों को स्थिरता प्राप्त होती है। धर्म से विचार श्रेष्ठ नहीं होते अपितु जीवन में श्रेष्ठता आती है। धर्म वस्तुस्वरूप का ज्ञान कराता है सम्यक् विचार मानसिक दृढ़ता को जन्म देते हैं। जो जितना मानसिक रूप से सुदृढ़ होता है वह उतना ही सफल जीवन जीता है। मानसिक रूप से कमजोर व्यक्ति का धर्म संकुचित होता जाता है। जैसे सांझ होने पर पुष्प संकुचित हो जाते हैं।

धार्मिक व्यक्ति सदैव जीवन का उज्जवल पक्ष देखता है। वह शिकायतों से मुक्त धन्यवाद की भावना से भरा होता है। धार्मिक व्यक्ति पक्षपात से रहित सभी का स्वागत करता है। धर्म भेदभाव को मिटा देता है। धर्म के सद्भाव में ही इतनी निर्मलता और

पवित्राता जन्मती है, क्योंकि धर्म से मन निर्मल और आत्मा पवित्रा होती है। धर्म निस्वार्थ भाव को जगाता है। स्वार्थ में धर्म नहीं संप्रदाय मिलता है। फूल नहीं काँटे मिलते हैं। प्रेम नहीं बैर मिलता है। स्वार्थ धर्म को दूषित करना है। जब धर्म, संप्रदाय का चोला पहन लेता है, तो मानवीयता, इंसानियत, सद्भावना का सिर्फ ढोंग रह जाता है। ऐसा व्यक्ति बाहर में धार्मिक मालूम पड़ता है, किन्तु अन्दर से महा अधार्मिक होता है। वर्तमान में धार्मिक लोग कम, संप्रदायी और ढोंगी लोग ज्यादा देख जा रहे हैं। यही कारण है कि मानवता आज सिसक-सिसक कर रो रही है।

धर्म जिव्हा तक नहीं जीवन में भी होना चाहिये। आज जिव्हा का धर्म जिंदा है। जहाँ देखो वहाँ धर्म के गीत गाये जा रहे हैं। लेकिन धर्म जीवन तक नहीं पहुँच रहा है। जब तक जीवन में धर्म प्रकट नहीं होगा, तब तक आत्मा की सुरक्षा नहीं हो सकती। भोजन जिव्हा पर हो तो तन की भूख नहीं मिटती, और भजन जिव्हा पर हो तो चेतन की भूख नहीं मिटती। इसलिये तन और चेतन की भूख मिटाने के लिये जिव्हा के नीचे भोजन और भजन का जाना आवश्यक है। जब जिव्हा के नीचे भोजन जाता है, तो हमारा यह क्षणिक जीवन क्षण भर के लिये सुखमय हो जाता है और जब जिव्हा के नीचे भजन जाता है, तो शाश्वत जीवन में सुख प्रकट हो जाता है। इसलिये धर्म मुख का स्वाद नहीं अपितु सुख की साधना है। धर्म जिव्हा का गीत नहीं जीवन का संगीत है।

ॐ

चित्त की सरलता ही परमात्मा का आह्वान है

आर्जव धर्म का अर्थ है सरलता। जिसके जीवन मे सरलता होती है वह दुनियाँ में सर्वश्रेष्ठ होता है। सरलता मनुष्य को मनुष्य बनाती है। सरलता से रहित मानव सम्मान का पात्रा नहीं होता, सरलता से रहित मानव विश्वास का पात्रा भी नहीं होता। सरलता सर्वगुणों का आधार है। सरलता सर्वधर्मों की भी आधार शिला है। सरलता के अभाव में सभी धर्म व्यर्थ है, क्योंकि मन-वचन काय की एकता के बिना धर्म का स्वाद नहीं लिया जा सकता। जैसे नींबू और शक्कर की एकता के बिना शिकंजी का स्वाद नहीं मिलता, ठीक उसी प्रकार मन वचन काय की एकता हुये बिना आर्जव धर्म का स्वाद नहीं आता। इसलिये आर्जव धर्म हमें छल-कपट मायचार से मुक्त् रखने का पावन संदेश देता है। छल तो छम-दम करके आता है, और जीवन में विष घोलकर, लम-शम करके चला जाता है। छल करना स्वयं को ही छलना है। जो अपने जीवन में छल करता है, कपट करता है मायाचारी करता है वह अपनी आत्मा को दीर्घ संसारी बनाता है। अतः सत्य हमारे अन्तर घट में अवतरित हो, उसके लिये सरलता का आविर्भाव करना होगा।

चारों कषायों में माया कषाय तो एक लड़की की तरह है, और इतिहास गवाह है, कि अधिकांशतः युद्ध कहीं न कहीं लड़की अर्थात् स्त्राी के कारण हुये हैं। राम रावण युद्ध में सीता का हरण मुख्य कारण था। तो महाभारत भी द्रोपदी के वचनों के कारण ही हुआ। इसी प्रकार माया कषाय भी हमारे सुखमय जीवन में अविश्वास का विष घोल देती है। एक बार का मायाचार जीवन भर के लिये अविश्वास का विष घोल देती है। एक बार का मायाचार जीवन भर के लिये अविश्वास का हेतु बन जाता है, और जहाँ विश्वास मर जाता है वहाँ शांति की कल्पना भी नहीं की

जा सकती। जिसका चित्त सरल है, उसके अंदर परमात्मा का जागरण है। जिसका चित्त वक्र है, उसके अंदर पापात्मा का जागरण है। कोई भी प्राणी पापात्मा नहीं बनना चाहता, अपितु परमात्मा होना चाहता है। जगपूज्य होना चाहता है। उसके लिये चित्त की सरलता अनिवार्य है। जो मायाचारी में माहिर होते हैं वे दुर्गति के पात्रा होते हैं। तिर्यंचगति में उन्हें अनेकों कष्ट उठाना पड़ते हैं।

जीवन में धोखा खाना श्रेष्ठ है, किन्तु किसी को धोखा देना श्रेष्ठ नहीं। धोखा खाने वाला अगर सरल स्वभावी है, तो उसकी संपदा कभी भी छीनी नहीं जा सकती, लेकिन जो धोखा देनेवाला है वह संपदा के लिये तरसता है, सुख के लिये तरसता है, और अंत समय में मरकर तिर्यंच होता है। मृदुमति नाम के मुनिराज ने ख्याति पूजा, लाभ, पतिष्ठा के लिये माया कषाय को अंगीकार कर लिया था जिसके फलस्वरूप उन्हें हाथी की पर्याय को प्राप्त होना पड़ा। जो रावण के द्वारा त्रिलोक मंडन नाम को प्राप्त हुआ तथा नगर में शोर मचाये जाने पर भरत के द्वारा शांत किया गया। माया कषाय का आश्रय एक क्षण के लिये भी योग्य नहीं है। माया की छाया से साया से, सदैव दूर, रहना चाहिये। मायाचारी व्यक्ति मुख में राम बगल में छुरी को धारण करने वाला होता है। ऊपर से भोला-भाला किन्तु अन्दर से बम का गोला होता है, किन्तु सच तो यही है जो दूसरों को धोखा देता है, वास्तव में वह स्वयं को ही धोखा देता है। मायावी व्यक्ति कभी भी धर्मात्मा नहीं हो सकता। जो धर्मात्मा होता है, वह मायावी नहीं हो सकता। हम मायाचार, कपट को छोड़कर मन-वचन-काय की सरलता को स्वीकारें और उत्तम आर्जवधर्म का बाहर ही नहीं अपितु अंतरंग में स्वागत करें।

ॐ

संस्कारहीन मनुष्य से संस्कारित कुत्ता श्रेष्ठ है

मानव जीवन पशु जीवन से श्रेष्ठ माना जाता है। मानव जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्व है। अच्छे संस्कार मनुष्य को आदर सम्मान के योग्य बनाते हैं। जितने भी महापुरुष इस धरती पर हुये हैं, उन्होंने संस्कारों को सर्वश्रेष्ठ संपदा मानकर स्वीकार किया। जन्म से कोई महानता को साथ लेकर नहीं आता। जन्मने के बाद जब अपने आचरण को संस्कारों से संस्कारित किया जाता है, तब महानता का सहज ही उदय होता है। संस्कार अंधकार से उजाले की ओर ले जाते हैं। संस्कारीहीन मनुष्य अमावश की जिंदगी जीता है। जानवर भी संस्कारित होकर अपने को मनुष्य के लिये उपयोगी बना लेते हैं। राष्ट्र की सुरक्षा में संस्कारित कुत्ते भी अपनी अहम् भूमिका निभाते हैं। जबकि संस्कारहीन मनुष्य आतंकवादी बनकर मानव जीवन की अनमोल खूबियों से वंचित रह जाते हैं। इसी लिये संस्कारहीन मनुष्य से संस्कारित कुत्ता श्रेष्ठ है।

आज संस्कारों पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। मानव धन वैभव की सम्पन्नता में अपने जीवन-मूल्यों से गिर रहा है। भौतिकता की थोथी चकाचौंध में संस्कारों से दूर होता चला जा रहा है। जीवन की श्रेष्ठता तो संस्कारों से ही बना करती है। यदि मानव जीवन से संस्कारों को सर्वथा दूर कर दिया जाय तो मनुष्य भी जंगली पशु हो जायेगा। घर परिवार, समाज का संचालन संस्कारों की उपादेयता से ही संभव है। जिस में परिवार में माता-पिता संस्कारति होते हैं, उस परिवार में बच्चों को अच्छे संस्कार सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे बच्चे अपना नैतिक, धार्मिक और व्यवहारिक विकास शीघ्र कर लेते हैं। संस्कारित बच्चे निश्चित रूप से चारित्रावान होते हैं। संस्कारित बच्चों में अपने परिवार, समाज व देश के लिय अच्छा करने का जज्बा पाया जाता

है। संसकारित बच्चों का भविष्य सुन्दर और जीवन प्रेरणादायक होता है।

संस्कार कंकर को शंकर, पाषाण को भगवान बना देता है। संस्कार जब तक आचरण में प्रकट नहीं होता, तब तक वह पुस्तक में लिखे हुये शब्दों जैसा है। संस्कार जब आचरण में प्रकट होता है, तो परमात्मा की अनुभूतियो को देता है। संस्कार कभी वस्त्रा की तरह न तो बदले जाते हैं, और न शस्त्रा की तरह कभी छोड़े जाते हैं। संस्कार सदाकाल जीवन्त रहते हैं। संसकार धर्मशास्त्रा की तरह पूजे जाते हैं संस्कारों का ही प्रभाव है कि मानव परमात्मा की दिव्यता को अपने अंदर छुपाये हुये होने के बाद भी संस्कारित पाषाण को परमात्मा मानकर पूजा करता है। जो माता-पिता अपने पुत्रा को राम और महावीर जैसा बनाना चाहते हैं उन्हें भी दशरथ कौशल्या तथा सिद्धार्थ त्रिाशला बनना होगा। आज हर माता-पिता अपने पुत्रा को तो श्रवण कुमार बनाना चाहते हैं, लेकिन स्वयं कंस बनकर अपने माता-पिता के साथ दुर्व्यवहार करते हैं। ऐसे समय में पुत्राों से श्रेष्ठ जीवन की कल्पना करना व्यर्थ हैं।

शाश्वत आनंद की यात्राा पर विराम लगाता है मोह

मोह जितना सघन होता है उतना ही पीड़ाकारी है, अहितकारी है। मोह का अर्थ है जो अपना नहीं उस पर अपनत्व की कामना। अर्थात् पर पदार्थों में प्रेयत्व की भावना मोह है। यह मोह हमें वास्तविक आनंद से मोड़कर क्षणिक आनंद की ओर ले जाता है, और उसी में डूबे रहने की सोच पैदा करता है। इससे मनुष्य का स्वविवेक कुंठित हो जाता है, अवरुद्ध हो जाता है। फिर वह नहीं सोच पाता कि वास्तव में हमारे लिये हित क्या है? और अहित क्या है? आचार्य भगवन् पूज्यवाद स्वामी कहते हैं कि हिताहित का ज्ञान न होना ही बहिरात्मा का लक्षण है। जो स्त्राी, पुत्रा, स्वजन, परिजन मित्राादि में अपनत्व की तीव्र भावना करता हुआ उनकी समृद्धि को अपनी समृद्धि मानता हुआ आनंदित होता है, वह बहिरात्मा है। इसलिये बहिरात्म भाव को विदा करने के लिये आवश्यक है कि हम अपने चाहने वालों की समृद्धि को अपनी समृद्धि मान आनंदित न हों अपितु उसे अपने से, अपनी आत्मा से पूर्ण पृथक स्वीकार करें।

मोह जितना प्रगाढ़ होता है व्यक्ति उतना ही अपने विवेक को तिलांजलि देता जाता है। जब सेठ सिद्धार्थ के आँगन में सुकौशल ने जन्म लिया, तो सिद्धार्थ को वैराग्य हो गया। तब सेठ की पत्नी सहदेवी ने उन्हें अपने कर्तव्य का पालन न करने वाले कर्तव्य हीन आदि-आदि अपशब्दों के द्वारा संबोधित किया। लेकिन मृत्यु और वैराग्य किसी का इंतजार नहीं करते। इसी उक्ति को चरितार्थ करते हुये सेठ सिद्धार्थ दीक्षित हो गये। पुत्रामोह में डूबी सहदेवी को जब किसी निमित्तज्ञानी से यह पता चला कि तुम्हारा बेटा सुकौशल मुनि के दर्श करते ही वैराग्य को उपलब्ध हो जायेगा तो उसने अपने पुत्रा को नगर में आये हुये मुनिराजों का दर्शन कराना मुनासिब न समझ आज्ञा दे दी, कि हमारे प्रांगण में मुनि

का प्रवेश नहीं होगा। कुछ समय बाद जब सुकौशल के पिता जो मुनि थे उसी नगर में आहारचर्या के लिये उसी गृह में आये, दरबारियों ने उन्हें अपशब्दों से सम्बोधित करते हुये लौटा दिया। जब सुकौशल ने यह दृश्य देखा तो इस विषय में अपनी माँ से पूछा। तब माँ ने कहा--बेटा ये सब आलसी प्रमादी और कामचोर प्राणी हैं, जो इधर-उधर भिक्षा माँगकर अपना पेट पालते हैं। यह सुनकर सुकौशल की धाय माँ रोने लगी, तब सुकौशल ने उससे रोने का कारण पूछा? उसने बताया--बेटा वह दिगम्बर मुनि तुम्हारे पिता हैं। बचपन में किसी निमित्तज्ञानी ने मुनिदर्शन से तुम्हारे वैराग्य के विषय में कहा था जिससे इस गृह में मुनि के आगमन पर पाबंदी है, लेकिन मालिक के विषय में अपशब्द सुनकर बड़ा दुःख हुआ। सुकौशल सोचते हैं धिक्कार है इस मोह को, जिसने मुनिराज के प्रति घृणा का भाव जगाया। बहिरात्मा सती के प्रति घृणा का भाव रखता है, सो यह सहदेवी बहिरात्मा थी। एक दिन सुकौशल मुनि हो जाते हैं। इधर सुकौशल की माँ सहदेवी पुत्रा वियोग में अपने प्राण त्याग देती है और जहाँ सुकौशल साधना में लीन थे, वहीं पर व्याघ्री होती है। सुकौशल को अपने पिता मुनि के साथ देख उसे पूर्वभव का स्मरण हो आता है और अतिक्रोध में सुकौशल का भक्षण कर लेती है। धिक्कार हो इस बहिरात्म दशा को, जिसमें मोह की प्रधानता से पुत्रा को धर्म से वंचित रखा, और द्वेष की तीव्रता में उसी पुत्रा को अपना अहितकारी मानकर, इसका भक्षण कर लिया। बहिरात्मा का राग जितना प्रगाढ़ होता है, विपरीतता में उतना ही प्रगाढ़ द्वेष भी होता है। यह राग-द्वेष ही हमारे जीवन में सबसे बड़े अहित का कारण है।

लोभ का अर्थ है जीवन भर कमाया किन्तु काम न आया

लोभ आत्मा का पतित करता है, लोभ के कारण आदमी अपने अमूल्य जीवन को कौड़ी के दाम बेचता है। लोभ के कारण आदमी न तो इसलोक में सुखी होता है और नहीं परलोक में सुख को उपलब्ध होता है अपितु लोभी व्यक्ति अपने सम्पूर्ण जीवन को व्यर्थ ही गँवाता है। परमात्मा की सत्ता वाला यह आत्मा लोभ के कारण ही इस चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करता है। लोभ कषाय जीवन की सम्पूर्ण उपलब्धियों को लेकर नष्ट हो देती है। लोभ में आदमी अपना विवेक खो देता है। लोभी का जीवन मात्र धन संग्रह करते-करते व्यतीत हो जाता है किन्तु कभी अपने जीवन में धन संपत्ति का भोग नहीं कर पाता। लोभी की संग्रहवृत्ति ही उसकी दुर्गति का कारण बन जाती है। लोभ कषाय की तीव्रता में रहनेवाला जीव नरक गति को प्राप्त होता है और नरक में महा भीषण दुःखों को सहन करता है। इसलिये अगर आप नरकादि दुर्गतियों से बचना चाहते हो तो लोभ कषाय को छोड़कर शुचिता को अंगीकार करो।

शौच का अर्थ है पवित्रता। शौच का अर्थ है निर्मलता, शुचिता, उज्ज्वलता, विमलता। शौच धर्म जीवन में पवित्रता लाता है और सच कहा जाये तो पवित्रता के बिना समस्त धर्मों का पालन भी निरर्थक है। धर्म का पालन ही जीवन की पवित्रता के लिये किया जाता है, किन्तु शौचधर्म के बिना अर्थात् पवित्राता के बिना धर्म का पालन ढकोसला है, धर्म नहीं। देह की पवित्राता होने पर जीवन में परमात्मा का द्वार मिलता है। अर्थात् देह की पवित्राता परमात्मा के द्वार तक पहुँचने के योग्य बनाती है, और आत्मा की पवित्राता परमात्मा बनाती है। आत्मा की पवित्राता के लिये मन की पवित्राता, निर्मलता होना आवश्यक है। जहाँ मन की निर्मलता होती है वहीं धर्म की शुरुआत हो सकती है। शौचधर्म के आते ही लोभ का भाव समाप्त हो जाता है। संतोष का उदय होता है। लोभ बहुरुपिया होता है। अनेक रूपों में अपना अधिकार जमाता है। कभी पद का लोभ, तो कभी धन का लोभ, कभी